❀ श्रीश्रीगुरु-गौराङ्गौ जयतः ❀

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।

धर्मः स्वनुष्ठितः पुंसां विष्वक्सेन कथासु यः

भागवत-पत्रिका

नोत्पादयेद् यदि रतिं श्रम एव हि केवलम् ।।

अहैतुक्यप्रतिहता यथात्मासुप्रसीदति ।।

सर्वोत्कृष्ट धर्म है वह जो आत्मा को आनन्द प्रदायक ।
भक्ति अधोक्षज की अहैतुकी विघ्नशून्य अति मंगलदायक ।।

सब धर्मों का श्रेष्ठ रीति से पालन करते जीव निरन्तर ।
किन्तु हरि-कथा-प्रीति न हो,श्रम व्यर्थ सभी,केवल बंधनकर।।

वर्ष ७ | गौराब्द ४७५, मास—श्रीधर २१, वार—करणोदशायी
बृहस्पतिवार, ३१ श्रावण, सम्वत् २०१८, १७ अगस्त १९६१ | संख्या ३

श्रीमुकुन्दमुक्तावली

(३)

[गताङ्कसे आगे]

दुष्टध्वंसः कणिकारावतंसः खेलद्वंशीपञ्चमध्वानशंसी ।
गोपीचेतः केलिभङ्गीनिकेतः पातु स्वैरी हन्त वः कंसवैरी ॥२१॥

वृन्दाटव्यां केलिमानन्दनव्यां कुर्वन्नारी चिराकन्दर्पचारी ।
नर्मोद्गारी मां दुकूलापहारी नीपारूढ़ पातु बर्हावचूडः ॥२२॥

रुचिरमन्त्रे रचय सखे वल्लितरतिं भजनततिम् ।
त्वमविरतिस्त्वरितगतिर्नतशरणे हरिचरणे ॥२३॥

रुचिरपटः पुलिननटः पशुपगतिर्गुणवसतिः ।
स मम शुचिर्जलदरुचिर्मनसि परिस्फुरतु हरिः ॥३४॥

केलिविहितयमलार्जुनभंजन सुललितचरितनिखिलजनरंजन ।
जोचनर्त्तनजितचलखंजन मां परिपालय कालियगंजन ॥२५॥

भुवनविसृत्वरमहिमाडम्बर विरचितनिखिलखलोत्कर संवर ।
वितर यशोदातनय वरं वरमभिलषितं मे धृतपीताम्बर ॥२६॥

चिकुरकरम्बितचारु शिखण्डं भालविनिर्जितवरशशिखण्डम् ।
रदरुचिनिर्धुतमुद्रितकुन्दं कुरुत बुधा हृदि सपदि मुकुन्दम् ॥२७॥

यः परिरचितसुरभीजघस्तदपि च सुरभीमर्दनदक्षः ।
मुरलीवादनखुरलीशाली स दिशतु कुशलं तव वनमाली ॥२८॥

रमितनिखिलडिम्बे वेणुपीतोष्ठबिम्बे हतखलनिकुरम्बे गल्लवीदत्तचुम्बे ।
भवतु महितनन्दे तत्र वः केलिकन्दे जगदविरलतुन्दे भक्तिरुर्वी मुकुन्दे ॥२९॥

पशुपयुवतिगोष्ठी चुम्बितश्रीमदोष्ठी स्मरतरलित दृष्टिर्निर्मितानन्दवृष्टिः ।
नवजलधरधामा पातु वः कृष्णनामा भुवनमधुरवेशा मालिनी मूर्त्तिरेषा ॥३०॥

अनुवाद—

जो दुष्टोंका दलन करते एवं कनेरके फूलोंको कर्णभूषणके रूपमें धारण किये रहते हैं, जो अपनी जगन्मोहिनी मुरलीसे पंचम स्वरका सर्वत्र विस्तार करते रहते हैं, गोपीजनोंका चित्त जिनकी विविध विलासपूर्ण भङ्गियोंका निकेतन बना हुआ है, वे परम स्वतन्त्र कंसारि श्रीकृष्ण सबकी रक्षा करें ॥२१॥

वृन्दाकाननमें नित्यनवीन आनन्द देनेवाली क्रीड़ाएँ करते हुए जो गोपाङ्गनाओंके चित्तमें नित्य-नूतन अनुराग उत्पन्न करते रहते हैं, गोपबालाओंकी प्रेमवृद्धिके लिये जो मधुर परिहास करते हुए उनके वस्त्रोंका अपहरण करके कदम्बके वृक्षपर चढ़ जाते हैं, वे मयूरपिच्छका मुकुट धारण करनेवाले श्रीकृष्ण-मेरी रक्षा करें ॥२२॥

जिनके नख अत्यन्त सुन्दर हैं, जो प्रणतजनोंके आश्रय हैं, उन श्रीहरिके चरणोंका, हे मित्र ! तुम जल्दी-से-जल्दी एक क्षणका भी विराम न लेकर अनुराग सहित निरन्तर भजन करो ॥२३॥

जिनके वस्त्र अत्यन्त सुन्दर हैं, जो यमुनाजीके तीर पर नृत्य करते रहते हैं, जो व्रजवासी गोपोंकी एकमात्र गति हैं और अनन्त कल्याण गुणोंके सद्म हैं, वे जलद कान्ति एवं अत्यन्त निर्मल स्वरूप श्रीहरि मेरे चित्त पटलपर सदा ही प्रकाशित रहें ॥२४॥

हे कालीयमर्दन श्रीकृष्ण ! आप खेल-ही-खेलमें अर्जुनके दो जुड़वाँ वृक्षोंको जड़से उखाड़ देते हैं, अपने अत्यन्त मनोहर चरित्रोंसे समस्त जनोंको आनन्दित करते रहते हैं, आप अपने नेत्रोंके नर्तनसे चपल खञ्जनका तिरस्कार करते हैं । आप मेरा सब ओरसे पोषण करें ॥२५॥

हे यशोदानन्दन ! आपकी महिमाका विस्तार सम्पूर्ण भुवनोंमें व्याप्त हो रहा है, आप समस्त दुष्ट-जनोंका संहार करनेवाले हैं तथा पिताम्बर धारण किये रहते हैं । आप कृपा करके मुझे मनचाहा उत्तम-से-उत्तम वरदान दीजिये ॥२६॥

जिनके घुँघराले बालोंमें मनोहर मयूरपिच्छ खोंसा रहता है, जिनका ललाट सुन्दर अष्टमीके चन्द्र-का भी पराभव करनेवाला है, जिनकी दशनकान्ति कुन्दकलियोंको मात करती है, हे विचारवान पुरुषों ! उन श्रीमुकुन्दका शीघ्र-से-शीघ्र अपने हृदय-आसन पर विरामान करो ॥२७॥

जो लाखों गौओंका पालन करते हैं और देवताओं के भयको दूर करनेमें अत्यन्त कुशल हैं तथा जिन्हें निरन्तर मुरली बजानेका अभ्यास हो गया है, वे वनमालाधारी भगवान् श्रीकृष्ण आपका सब प्रकार कुशल करें ॥२८॥

जो अपने प्रेमी-स्वभाव एवं मधुर व्यवहारसे समस्त गोपबालकोंका रञ्जन करते रहते हैं, भाग्यवती मुरली जिनके अधरामृतका निरन्तर पान करती रहती है, जो दुर्जनवृन्दका नाश करते रहते हैं, गोप-रमणियाँ जिन्हें अपने हृदयका प्यार देती रहती हैं, जो पितृभक्तिके कारण नन्दरायजीका आदर करते हैं, जो विविध लीलारसकी वर्षा करनेवाले मेघके समान हैं और अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड जिनके उदरमें समाये रहते हैं, उन मुक्तिको भी हेय दिखलाकर प्रेमानन्द प्रदान करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णमें आप लोगोंकी प्रचुर भक्ति हो ॥२९॥

गोप युवतियोंका वृन्द जिसे सब ओरसे प्यार करता है और जिसकी दृष्टि उनके प्रति अनुरागसे भरी रहती है तथा जो उन पर सदा आनन्दकी वर्षा करती रहती है, जिसकी अङ्गकान्ति नवीन जलधरके समान है और जो अपने वेशसे त्रिभुवनको मोहित करती है, वह श्रीकृष्णनामकी वनमाला विभूषित दिव्यमूर्त्ति आपलोगोंकी रक्षा करे ॥३०॥

भगवान्‌की अप्रकट-लीलाका रहस्य

[पूर्व-प्रकाशित वर्ष ७, संख्या २, पृष्ठ ३३ से आगे]

श्रीमद्भागवत ११।३०।४० श्लोकमें श्रीशुकदेव गोस्वामी परीक्षित महाराजके प्रति कह रहे हैं—

'इत्यादिष्टो भगवता कृष्णेनेच्छा-शरीरिणा'

श्रीधरस्वामीजी इस श्लोकांशकी इस प्रकार व्याख्या करते हैं—"भगवान् अपनी शुद्धसत्त्वमयी श्रीमूर्त्तिको अन्तर्हित करके तत्प्रतिकृति मूर्त्ति (अपने शरीरके समान दूसरी एक मूर्त्ति) रख कर मरणशील मनुष्यका अनुकरण मात्र किये थे।"—यही इस श्लोकका भावार्थ है। आगे "देवादयो ब्रह्ममुख्या न विश्वन्तं स्वधामनि। अविज्ञातगतिं कृष्णं ददृशुश्चाति-विस्मिताः ॥"—(११।३१।८) में परीक्षितके प्रति श्रीशुकदेवके द्वारा कहे गये श्लोकमें उपरोक्त अनुकरणाभिनय भलीभाँति स्पष्ट हो जाता है।"

श्रीजीवगोस्वामी क्रमसन्दर्भमें कहते हैं—'इच्छा-शरीरिणाका अर्थ है—जिनका शरीर इच्छाके अधीन है, उनके द्वारा; अर्थात् उनकी अचिन्त्य निरंकुश इच्छा होते ही उनका आविर्भाव (और तिरोभाव) होता है; इस विषयमें कोई भी दूसरा कारण नहीं है।'

श्रीविश्वनाथचक्रवर्ती जी कहते हैं—'इच्छा-शरीरिणा'—का अर्थ है—जो इच्छामात्रसे ही सबके द्वारा वन्दित उत्तम शरीरधारी है, उनके द्वारा।'

(श्रीमद्भागवत ११।३०।३९ श्लोकमें भगवान् श्रीकृष्ण सारथि-दारुकके प्रति कह रहे हैं—) 'मन्मायारचनामेतां विज्ञायोपशमं व्रज'-इस श्लोककी व्याख्या इस प्रकार है—दारुक सारथिको सान्त्वना प्रदान करनेके लिये इस श्लोकमें भगवान् यह बतला रहे हैं कि मौषल और देह-त्याग—ये दोनों लीलाएँ मेरी मायाके द्वारा इन्द्रजालकी भाँति रचित हैं। अतएव प्राकृत लोगों द्वारा देखी जाने वाली मौषल और देह-त्याग आदिकी लीलाएँ इन्द्रजालके समान मेरी माया द्वारा रचित होनेके कारण तुम्हें दुःखित नहीं होना चाहिये। 'तु' शब्द का तात्पर्य यह है कि मेरे विरोधी दूसरे प्राकृत लोग मेरी वैसी लीलाओंसे भले ही मोहित हों, तुम्हें इसके लिये मोहित नहीं होना चाहिये।—(क्रम-सन्दर्भ)

श्रीमद्भागवत ११।३१।६ श्लोकमें श्रीशुकदेव जी परीक्षितसे कह रहे हैं—

लोकाभिरामां स्वतनुं धारणा-ध्यानमङ्गलम् ।
योगधारणयाग्नेय्याऽदग्ध्वा धामाविशत् स्वकम् ॥

इस श्लोककी व्याख्यामें श्रीमध्वाचार्य स्वकृत भागवत तात्पर्यमें इस प्रकार कहते हैं—

'भगवान् आग्नेय-धारणाद्वारा अपने शरीरको बिना जलाये शरीरके साथ ही अपने धाममें प्रवेश किये। तन्त्र भागवतमें भी कहा गया है—'दूसरे-दूसरे सब देवता आग्नेय-धारणा द्वारा अपने-अपने शरीरको जला कर परम पदको प्राप्त करते हैं, परन्तु कृष्ण आदि सर्वरूपवान् नृसिंह रूपी देव भगवान् हरि उनके लिंग शरीरोंका नाश करके उन देवताओं द्वारा सुशोभित होकर विश्व-प्रलयकालमें नृत्य किया करते हैं। परन्तु स्वयं नित्यानन्द स्वरूप होनेके कारण अपना शरीर बिना जलाये ही स्वधाममें प्रवेश करते हैं।'

—(भागवत-तात्पर्य)

योगियोंकी इच्छा-मृत्यु होती है । वे अपने शरीरको आग्नेयी भोग-धारणा द्वारा जला कर दूसरे-दूसरे उत्तम लोकोंमें प्रवेश करते हैं; परन्तु भगवान् कृष्ण वैसे नहीं हैं, वे अपना शरीर बिना जलाये ही उसके साथ ही वैकुण्ठ धाममें प्रवेश किये थे। इसका कारण यह है कि उनके श्रीअङ्गमें सारे लोक-समूह सर्वतोभावेन रमण करते हैं अर्थात् निवास करते हैं; अतएव जगत्का आश्रयस्वरूप उनका शरीर जल जाने से जगतके भी जल जानेका प्रसङ्ग उपस्थित हो पड़ता है।××××आजकल भी ऐसा देखा जाता है कि भगवान्के उपासकों को ध्यान-धारणा द्वारा ही भगवान् के रूपका साक्षात्कार होता है और फलकी प्राप्ति होती है।×××यदि भगवान् अपना शरीरर बिना जलाये ही तिरोहित होकर स्वधाममें प्रवेश नहीं कर सकें तो भगवान्के शरीरके लिये व्यवहृत 'लोकाभिराम' आदि विशेषण अनर्थक हो पड़ेंगे। इसलिये भगवान् अपना शरीर जलायें बिना सशरीर ही प्रस्थान किये—यही अर्थ युक्ति-संगत है।' —(श्रीधरस्वामी)

यदि एक वाक्यमें किसी पदका कोई दूसरा अर्थ दीख पड़े, तो "आकाश-स्तल्लिङ्गात्"—(ब्रह्मसूत्र १।१।२२)—इस न्यायके अनुसार उपदेश-पद-समूहके द्वारा ही उसके अर्थका निर्णय होता है । अतएव 'दग्धा' आदिका जो अर्थ प्रतीत होता है, 'लोकाभिरामां' आदि पदोंके द्वारा उसका अर्थ 'अदग्धा' अर्थात् 'बिना जला हुआ' ही होगा । 'लोकाभिरामां' पदसे भगवत् तनुका जगदाश्रयत्व प्रतिपादित हो रहा है। उक्त 'लोक' शब्दसे महावैकुण्ठके नित्य पार्षद आदि भक्तों एवं आत्माराम ज्ञानीजनोंसे लेकर स्थावर आदि तक सबका बोध होता है। फिर 'ध्यान-धारणामङ्गलं'-शब्दसे यह भी बोध होता है कि वे अपने साधक जीवोंके भी आश्रय हैं। ध्यान और धारणाके प्रभावसे धारणा और ध्यान करनेवाले व्यक्तियोंके लिये जो (भगवत्-तनु) मङ्गल-स्वरूप हैं, उनका ही फिर दग्ध होना या नश्वर होना कैसे सम्भव है। 'स्व-तनु'-शब्दके कर्मधारय समासोक्ति द्वारा (नीलोत्पलका नीला होना जैसे) भगवत्-तनुमें सत्ताका अव्यभिचार अतिशय रूपसे निर्द्धारित है।

इसके पश्चात् योगियोंके भ्रमका उल्लेख कर उसको दूर करनेके लिये कहते हैं कि भगवान्ने आग्नेयी-धारणा की थी, यह सत्य है, परन्तु उसके द्वारा अपने शरीरको बिया जलाये ही अपने धाममें प्रवेश कर गये। अतएव योगियोंको शरीर त्यागकी शिक्षा देनेके लिये ही आग्नेय-धारणाके पश्चात् अन्तर्द्धान होकर अपने धाममें चले गये—ऐसा समझना चाहिये । इसके अतिरिक्त दूसरा अर्थ ठीक नहीं है । अतएव भगवान् सशरीर ही—इसे बिना जलाये ही अपने धाममें चले गये—यही विचार युक्ति-संगत और विचार-संगत है । 'अपना शरीर बिना जलाये'—इस वाक्यसे स्वेच्छामयी मायाद्वारा कल्पित शरीरको जला करके—यही अर्थ सूचित होता है। इसीलिये पहले २१।३०।४० श्लोकमें भगवान् को इच्छा-शरीर कहा गया है । जो चीज इच्छासे प्रकटित होती है, इच्छासे ही वह अप्रकटित होती है।

अतएव उनकी आग्नेय धारणा भी उसी प्रकार कल्पना मयी है। कृष्ण-सन्दर्भमें भी 'इच्छा-शरीर' का अर्थ-'स्वेच्छा प्राकाश' किया गया है। यहाँ इच्छा-शक्ति के प्रभावसे ही वे मायाके प्रेरक हैं—ऐसा समझना होगा।

(—क्रम सन्दर्भ)

योगियोंकी भाँति स्वच्छन्द मृत्युभ्रमका निषेध कर भगवान जो आग्नेयी धारणा द्वारा अपने शरीरको बिना जलाये ही अपने वैकुंठ धाममें प्रवेश किये थे, उससे एवं 'अदग्ध्वा' पदसे उनका शरीर जो लोकाभिराम और धारणा तथा ध्यानके लिये मङ्गलस्वरूप है—ये दो कारण भी कहे गये हैं।

(—श्रीधर स्वामी)

'कुछ लोग 'धारणा-ध्यान-मङ्गल' अर्थात् भगवान अपने शरीरको जलाकर सोनेकी भाँति और भी अधिक उज्ज्वल सशरीर ही अपने धाममें प्रवेश किये थे—ऐसा भी कहते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जो लोग भगवानके शरीरको प्राकृत नश्वर और अग्निद्वारा जलने योग समझते हैं, उनके लिये इससे यह दिखलाया कि उनका शरीर वैसा नहीं है; वह न आगमें जलता है, न मरता है-श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती

(क्रमशः)

—जगद्गुरु श्रीमद्भक्ति सिद्धान्त सरस्वती

नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर

साधन भक्तिके जितने भी अङ्ग या भेद हैं उन सबमें एकमात्र नामका आश्रय करनेसे ही सर्वसिद्धि होती है—ऐसा जिनका विश्वास है, वे सर्वोत्तम साधक हैं। श्रीमन्महाप्रभुकी यह शिक्षा शिक्षाष्टकमें पायी जाती है।

प्रामाणिक ग्रन्थोंके अनुसार ऐसा पता चलता है कि श्रीहरिदास ठाकुर मुसलमानके घर पैदा हुए थे। इनका जन्मस्थान बनग्राम (चौबीस परगना, बंगाल) के निकट बूढ़न नामक एक गाँवमें था। अल्प अवस्थामें ही पूर्व संस्कारके कारण भगवद्भजनमें उनकी रुचि दीख पड़ने लगी। धीरे-धीरे रुची ऐसी बढ़ी कि छोटी अवस्थामें ही उन्होंने घर-बार सब कुछ छोड़ दिया और बेनापुलके वनमें एक छोटी सी झोपड़ी बना कर वहीं पर दिन-रात निरन्तर हरिनाम-संकीर्तन स्मरणमें ही अपना सारा समय बीताने लगे। इनकी ऐसी साधुता देख कर दूर-दूरके लोग भी उनके दर्शनों के लिये आने लगे। यह देख कर कुछ दुष्ट लोगोंको बड़ी ईर्ष्या हुई। एक रात उन्होंने श्रीहरिदासको बदनाम करनेके लिये उनकी निर्जन कुटीमें एक रूपवती वेश्याको भेजा। वेश्याने श्रीहरिदास ठाकुर को भ्रष्ट करनेके लिये लगातार तीन रात प्रयत्न किया। परन्तु इन तीन रातोंमें श्रीहरिदास ठाकुरके मुखसे शुद्ध हरिनाम श्रवण कर उस वेश्याका ही हृदय परिवर्तन हो गया। वह रोती-रोती हरिदास ठाकुरके चरणोंमें गिर पड़ी और अपने अपराधके लिये क्षमा माँगने लगी। श्रीहरिदास ठाकुरने उसकी निष्कपट प्रार्थनासे उसे हरिनाम करनेका उपदेश दिया तथा वह कुटिया उसे भजन करनेके लिये देकर स्वयं वहाँसे भगवती भागीरथीको पार कर सप्तग्राम नामक तत्कालीन प्रसिद्ध नगरमें पण्डित यदुनन्दन आचार्यके यहाँ रहने लगे।

सप्तग्राम उस समय बङ्गालका एक बड़ा ही समृद्ध नगर था। श्रीहिरण्यगोवर्द्धन वहाँके जमींदार थे। श्रीयदुनन्दन आचार्य इन्हीं श्रीहिरण्यगोवर्द्धन मजुमदारके पुरोहित थे। श्रीहरिदास ठाकुर कभी-कभी

पण्डितजीके साथ श्रीहिरण्यगोवर्द्धनकी सभामें आया-जाया करते थे। एक दिन उस सभामें गोपाल चक्रवर्ती नामक एक ब्राह्मणबन्धुके साथ श्रीनाममाहात्म्य के सम्बन्धमें हरिदास ठाकुरका बड़ा ही तर्क-वितर्क हो गया। श्रीहिरण्यगोवर्द्धनने उस ब्राह्मणको बड़ा ही डाँटा-फटकारा और अपने दरबारसे निकाल दिया। वैष्णव-अपराधका फल यह हुआ कि कुछ ही दिनोंमें उस ब्राह्मणको गलित कुष्ट रोग हो गया।

इसी समय श्रीहरिदास ठाकुरके साथ श्रीहिरण्य गोवर्द्धनके पुत्र श्रीरघुनाथदासकी भेंट हुई। रघुनाथ-दास उस समय बहुत ही छोटे बालक थे। फिर भी हरिदास ठाकुरकी कृपासे उनके हृदयमें शुद्ध भगवद्-भक्तिका संचार हो गया। गोपाल चक्रवर्तीकी दुर्दशा की बात सुनकर हरिदास बड़े दुखी हुए। वे उस स्थानको भी छोड़ कर श्रीमद् अद्वैताचार्यके आश्रयमें फुलिया नामक ग्राममें गंगाके तट पर एक निर्जन गुफा में रह कर भजन करने लगे।

भक्तजन प्रतिष्ठासे जितना भी घृणा क्यों न करें और जनसंगसे जितना भी दूर क्यों न रहें, भक्तिकी उज्ज्वल प्रभासे वे कहीं भी छिपे नहीं रह सकते। फुलियामें भी श्रीहरिदासकी भक्ति-प्रभा दूर-दूर तक विस्तृत होने पर मुसलमानोंको उनके प्रति ईर्ष्या होने लगी। उन लोगोंकी यह ईर्ष्या इतनी दूर तक बढ़ी कि हरिदास ठाकुर पर बड़े-बड़े अत्याचार किये गये। उनको नवद्वीपके बाईस बाजारोंमें कोड़े लगाये गये, उनके शरीरका चमड़ा एवं मास उड़ा दिया गया और मरा हुआ समझ कर उनको भागीरथीकी धारामें बहा दिया गया। परन्तु वे जाह्नवीमाताकी गोदसे उठ कर पुनः अपनी गुफामें हरिनाम करते-करते लौट आये। लोग यह देख कर हैरान थे कि वे मारनेवालों को आशिर्वाद दे रहे थे तथा भगवानसे उनको क्षमा करनेके लिये प्रार्थना कर रहे थे।

कुछ दिनोंके पश्चात् श्रीधाम मायापुर (श्रीनवद्वीप) में स्वयं भगवान श्रीचैतन्य महाप्रभु आविर्भूत हुए। श्रीअद्वैताचार्यके साथ हरिदास ठाकुरने भी श्रीमन्म-हाप्रभुका प्रदाश्रय किया। उसी समयसे वे श्रीमहा-प्रभुके नाम-प्रचारमें आचार्यके रूपमें नियुक्त हुए। इसलिये ये नामाचार्य हरिदास ठाकुर भी कहलाते हैं। जब श्रीमहाप्रभुजी संन्यास ग्रहण करनेके पश्चात श्रीजगन्नाथ पुरीमें चले गये, उस समय हरिदास ठाकुरको भी अपने साथ वहाँ ले गये और वहीं सिद्ध-बकुलमें रखा। हरिदास ठाकुरके निर्याणके समय श्रीमहाप्रभुने स्वयं उनकी समुद्रके तट पर समाधि देकर बड़े समारोहके साथ संकीर्तन और विरह महोत्सव किये।

श्रीमन्महाप्रभुजीकी लीलाका यह वैशिष्ट्य है कि उनके जो भक्त जिस भक्तिके विषयमें उच्च आसनको प्राप्त थे, उन्होंने उसीके द्वारा उस विषयमें अपनी शिक्षाका जगत्में प्रचार करवाया। श्रीमहाप्रभुजी ने हरिदास ठाकुरसे कुछ प्रश्न कर उनके ही मुखसे श्रीनाम-तत्त्वका प्रकाश करवाये हैं, जिनका वर्णन श्रीचैतन्यचरितामृत, श्रीचैतन्यभागवत और दूसरे-दूसरे ग्रन्थोंमें किया गया है।

साधन भजनकी पद्धति बहुत प्रकार की है। परन्तु केवल नामाश्रित भजनकी पद्धति एक ही प्रकार की है। इस भजन-पद्धतिकी शिक्षा श्रीमहाप्रभुजीने श्रीह-रिदास ठाकुर द्वारा दिलवायी है। श्रीमहाप्रभुजीके समय से ही महाजन लोग इसी पद्धतिका अनुसरण करते आ रहे हैं। प्राचीन कालमें भी व्रजके वैष्णव संत इसी पद्धतिसे भजन किये थे। हमने भी अपनी आँखोंसे श्रीजगन्नाथ क्षेत्रमें इसी पद्धतिसे बड़े-बड़े भजनानन्दी वैष्णवोंको भजन करते देखा है। निरप-राध होकर निर्जनमें निरन्तर श्रीभगवन्नामका श्रवण, कीर्तन और स्मरण करना—यही ऐकान्तिक भजन-पद्धति है, श्रीहरिभक्तिविलासके उपसंहारमें श्रीसनातन गोस्वामी तथा श्रीगोपाल भट्ट गोस्वामी दोनोंने ही इसी पद्धतिका स्पष्ट रूपसे उल्लेख किया है।

—जगद्गुरु श्री भक्तिविनोद ठाकुर

श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलम्

श्रीमद्भागवत ही वास्तवमें तत्त्व-ज्ञानाभिलाषियोंके लिये एकमात्र प्रमाण-शिरोमणी हैं। संसारमें नाना-प्रकारकी योनियोंमें भ्रमण करते-करते किन्हीं-किन्हीं महाभाग्यशाली जीवोंको ही तत्त्व जिज्ञासा उत्पन्न होती है अर्थात् मैं कौन हूँ ? मुझे इतना दुःख क्यों हो रहा है ? इस दुःखसे छुटकारा पानेका तथा पराशान्ति लाभ करनेका उपाय क्या है ? और मेरे नित्य पिता जगदीश्वर कौन हैं ? —इत्यादि अलौकिक विषयोंको जाननेकी इच्छा उत्पन्न होती है। उस समय इन सब विषयोंकी मीमांसाके लिये प्रमाणोंकी आवश्यकता होती है। क्योंकि प्रमाणके बिना वस्तुका निर्णय होना संभव नहीं है। वस्तुके विषयमें यथार्थ ज्ञानको 'प्रमा' कहते हैं। यह यथार्थ ज्ञान या 'प्रमा' जिससे सिद्ध होता है उसको प्रमाण कहते हैं। प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, इत्यादि अनेक प्रकारके प्रमाण होते हैं।

श्रीभगवान अप्राकृत वस्तु हैं। प्राकृत इन्द्रियोंके द्वारा उनको जाना नहीं जा सकता है। इसीलिये उनको अधोक्षज और अतीन्द्रिय कहा जाता है। बद्ध जीवोंमें भ्रम (एक वस्तुको दूसरी वस्तु समझ बैठना), प्रमाद (अन्यमनस्कता), विप्रलिप्सा(वंचना करने की इच्छा) और करणापाटव अर्थात् इन्द्रियोंकी अपटुता—ये चार दोष रहने पर वह अलौकिक अतिन्द्रिय अप्राकृत और अचिन्त्य वस्तुका स्पर्श करनेमें समर्थ नहीं होता। बद्ध जीवोंके प्रत्यक्ष और अनुमान इत्यादि प्रमाण-समूह दोष युक्त होनेके कारण अलौकिक एवं अधोक्षज भगवानके विषयमें प्रमाण नहीं हो सकते। अलौकिक वस्तुके सम्बन्धमें अलौकिक वेदादिशास्त्र ही यथार्थ प्रमाण हैं।

वेदादिशास्त्र अनन्त और दुरधिगम्य हैं। अतः उनके द्वारा वास्तविक वस्तुका निर्णय होना अतीव दुष्कर है। इसके अतिरिक्त नाना मुनियोंके नाना मत प्रचलित होनेके कारण जीवोंके लिये वास्तविक सिद्धान्तको हृदयङ्गम करना अत्यन्त कठिन हो पड़ता है। इसीलिये परम करुणामय हरिने कृपापूर्वक श्रीव्यासरूपमें अवतीर्ण होकर समस्त शास्त्रोंका मंथन कर श्रीमद्भागवतरूप अमृतका जगतमें दान किया है। श्रीमद्भागवतमें वेदादि शास्त्रोंका सार निहित है। इसलिये श्रीमद्भागवतका मत ही सर्वशास्त्रोंका मत है और यही मत सर्वश्रेष्ठ है। यही कारण है कि विद्वानोंने ग्रन्थसम्राट श्रीमद्भागवतको ही तत्त्व निर्णयके विषयमें अद्वितीय अमल प्रमाण, उत्कृष्ट प्रमाण और प्रमाण शिरोमणि माना है। इस विषयमें श्रीगौर-कृष्णके नित्यपार्षद जगत्गुरु श्रीजीवगोस्वामीने स्वरचित तत्त्व संदर्भमें विस्तृतरूपसे बतलाया है। सज्जन लोग श्रद्धापूर्वक उसका अध्ययन करने पर श्रीमद्भागवतके अपूर्वतत्त्वको हृदयङ्गम कर सकेंगे। श्रील जीव गोस्वामीजी तत्त्वसंदर्भमें कहते हैं—

बद्ध जीव स्वभावतः भ्रमादि दोषोंके वशीभूत होनेके कारण अचिन्त्य अलौकिक वस्तुको स्पर्श करनेके अयोग्य हैं। उनके प्रत्यक्ष और अनुमान आदि प्रमाण सर्वदा दूषित होते हैं। इसलिये प्रत्यक्ष और अनुमान आदि प्रमाण शुद्ध प्रमाण नहीं माने जाते हैं। इसके विपरीत अनादि सिद्ध सर्वपुरुष परम्परासे प्राप्त समस्त प्रकारके लौकिक और पारलौकिक ज्ञानोंके कारणस्वरूप अप्राकृत वचन-लक्षण—वेद ही अचिन्त्य अप्राकृत भगवत्तत्त्वके विषयमें एकमात्र प्रमाण हैं।

भगवानके विषयमें वेदोंका प्रमाण महाजनों द्वारा

समर्थित राजपथ है । क्योंकि "तर्काप्रतिष्ठानात्" (ब्र. सू. २।१।११) "अचिन्त्याः खलु ये भावा न तांस्तर्केण योजयेत्" (म. भा. भीष्म पर्व ५।२२) "शास्त्र योनित्वात्" (ब्र सू. १।१ ३) श्रुतेस्तु शब्द मूलत्वात्" (ब्र. सू. २।१।२७) इत्यादि ब्रह्मसूत्र और महाभारत आदि ग्रन्थोंके वचनोंसे एवं—सर्व-शक्तिमान परमेश्वर ! आपकी वाणी वेद ही पितरों, देवताओं और मनुष्योंके लिये श्रेष्ठ मार्ग-दर्शकका काम करते हैं; क्योंकि उन्हींके द्वारा स्वर्गमोक्ष आदि अदृष्ट वस्तुओंका बोध होता है और इस लोकमें भी किसका कौन सा साध्य है और क्या साधन है—इसका भी निर्णय उन्हींसे होता है । श्रीकृष्णके प्रति श्रीउद्धव द्वारा कथित इस वचनसे भी यह प्रमाणित है कि वेद ही प्रमाण है ।

फिर एक तो ये वेद दुष्पार दुर्बोध और दुर्गम हैं; दूसरे भिन्न-भिन्न मुनियोंने मंत्रोंके भिन्न-भिन्न प्रकारके अर्थ लिखे हैं । ऐसी दशामें वेदोंका वास्तविक अर्थ निर्णय करना कठिन ही नहीं असम्भव प्रतीत होता है । इसलिये वेदार्थ निर्णायक एवं साक्षात वेद स्वरूप इतिहास पुराणोंका विचार करना कर्तव्य है । इस विषयमें महाभारतका विचार इस प्रकार है—

"इतिहास-पुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्" (म. भा. आ. १।२६७) अर्थात् इतिहास (रामायण-महाभारत) और पुराणोंके द्वारा ही वेदोंका अर्थ समझना चाहिये ।

शास्त्र कहते हैं--"पुराणात् पुराणम्" अर्थात जो वेदके अर्थ को पूरा करे उसका नाम पुराण है । अवेद द्वारा वेदका पूरण नहीं हो सकता । शीशा से कभी भी सोने की चूड़ी की कमीको पुर नहीं किया जा सकता । सोनाके अभावकी पूर्ति सोनासे ही की जा सकती है । अतः वेदको पूरण एवं परिस्फुट करनेवाले पुराण और इतिहास वेदों से अभिन्न और स्वयं वेद ही हैं ।

यहाँ एक प्रश्न उठता है—यदि पुराण और इतिहासोंको भी वेद मान लिया जाय तो पुराणों और इतिहासोंकी जगहों पर दूसरे पुराण शास्त्रोंकी खोज करनी होगी । क्योंकि शास्त्रोंमें वेदोंसे अलग पुराणों का भी उल्लेख मिलता है । और यदि 'वेद' शब्दसे पुराण और इतिहासोंको ग्रहण नहीं किया जाता है तब वेदोंके साथ पुराण इतिहासोंका अभेद स्वीकृत नहीं होता । इसका उत्तर यह है कि—एकार्थ प्रतिपादक और अपौरुषेय होनेके कारण वेदोंके साथ इतिहास पुराण अभिन्न होने पर भी स्वर और क्रमका भेद होनेके कारण उनमें वेद भी स्वीकृत है ।

ऋक् इत्यादि वेदोंकी तरह इतिहास और पुराण भी अपौरुषेय हैं अर्थात् किसी पुरुषके द्वारा रचित नहीं है । माध्यन्दिन श्रुति (बृ. आ. उ. २।४।१०) में भी लिखा है कि—याज्ञवल्क्य अपनी धर्मपत्नी मैत्रेयीसे कहते हैं कि—"हे मैत्रेयी ! इस प्रकार ऋग-वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद तथा इतिहास और पुराण—ये सब परमेश्वरके निःश्वाससे प्रादुर्भूत हुए हैं । तभी तो स्कन्द पुराणके प्रभास खण्डमें लिखा है—"प्राचीन कालमें पितामह ब्रह्माजीके कठोर तपस्या में निमग्न होनेपर उनसे छः अङ्गों और पदक्रमोंके सहित समस्त वेद प्रकाशित हुए । तत्पश्चात सर्वशास्त्र-मय नित्य और परम कल्याणप्रद एकसौ करोड़ श्लोकोंवाले पुराण श्रीब्रह्माजीके मुखसे प्रकाशित हुए । यह एक सौ कोटि श्लोकोंवाला पुराण ब्रह्मलोक (सत्यलोक) में अभी भी वर्तमान है । श्रीमद्भाग-वत तृतीय स्कन्दमें भी देखा जाता है—श्री मैत्रेय ऋषि ब्रह्माके चारों मुखोंसे चारों वेदोंकी प्रकाश होने की बात बतलाकर विदुरजीसे फिर कहते हैं—

इतिहास पुराणानि पंचम वेदमीश्वरः ।
सर्वेभ्य एवं वक्त्रेभ्यः ससृजे सर्वदर्शनः ॥
भा० ३।१२।३६

(अर्थात् पंचम वेद स्वरूप इतिहास और पुराण ब्रह्माजीके मुखसे आविर्भूत हुए) यहाँ पर स्पष्ट रूपमें

इतिहास और पुराणोंको वेद बतलाया गया है। इस विषयमें दूसरे-दूसरे शास्त्रोंमें भी लिखा है—

"पुराणं पंचमो वेदः।
इतिहासः पुराणं च पंचमो वेद उच्यते।"

भविष्य पुराणका भी कथन है—श्रीवेदव्यास द्वारा प्रकाशित "महाभारत" पंचम वेद है। सामवेदीय छान्दोग्योपनिषद्में भी (३।१५।७) देखा जाता है—हे भगवान! ऋक्, यजुः, साम, अथर्व एवं वेदोंके अन्तर्गत पंचमवेद इतिहास और पुराणों का भी मैंने अध्ययन किया है।

इतिहास और पुराणोंका पंचमवेद होनेका कारण वायु पुराणमें दिया गया है। जैसे—पहले यजुर्वेदके नामसे सम्पूर्णवेद एक था। पीछेसे श्रीव्यासदेवजी ने विषयोंके अनुसार यजुर्वेदको चार भागोंमें विभक्त कर दिया। उसके द्वारा चतुर्होत्रि चार ऋत्विकों द्वारा सम्पन्न होनेवाला यज्ञ उत्पन्न हुआ। उसके द्वारा उन्होंने यज्ञकी व्यवस्था की। अर्थात् यजुर्वेदके द्वारा अध्वर्यु, ऋग्वेद द्वारा होता, सामवेद द्वारा उद्गाता और अथर्व वेद द्वारा ब्रह्माकी व्यवस्था की। इसके पश्चात भी यजुर्वेदका जो अंश बच रहा था उसको पुराणार्थ-विशारद श्रीव्यासदेवजीने आख्यान-उपाख्यान द्वारा सुसज्जित करके इतिहास और पुराणोंके रूपमें प्रकाशित किया।

वेदोंके अंशभूत पुराण-समूह भी वेदोंकी तरह नित्य हैं। व्यासके रूपमें भगवान ही पुराणोंका युग-युगमें प्रकाश करते हैं। मत्स्य पुराणमें भी श्रीभगवानने अपने श्रीमुखसे कहा है—हे द्विजोत्तम! कालके प्रभावसे पुराणोंको विशृंखल रूपमें फैले हुए देखकर मैं युग-युगमें व्यासके रूपमें अवतीर्ण होकर पूर्व सिद्ध पुराणोंको ही सहज एवं बोधगम्य भाषामें बनाने के लिये प्रकाशित करता हूँ। पुनः कहते हैं—मैं प्रत्येक द्वापरमें चार लाख श्लोकोंवाले पुराणको अठारह भागोंमें विभक्त कर भूलोकमें प्रकाश करता हूँ। आज भी सौ करोड़ श्लोकोंवाले पुराण-समूह ब्रह्मलोकमें विद्यमान हैं। उनमेंसे ही संक्षेपमें चार लाख श्लोकों को भूलोकमें प्रकाशित किया हूँ।

फिर प्रश्न होता है—पुराणोंके स्कन्द पुराण अग्नि पुराण, वायु पुराण, गरुड़पुराण, आदिनाम कैसे हुए? इसका उत्तर यह है कि—जिस प्रकार कठ ऋषिने वेदोंकी जिन कतिपय शाखाओंका अध्ययन किया था अथवा कराया था उन शाखाओं की प्रसिद्धि उनके ही नामके अनुसार 'काठकशाखा' हुई हैं। उसी प्रकार सृष्टिके आरम्भमें स्कन्द और अग्निने जिन-जिन पुराणोंको कहा है उन-उन पुराणों-का नामकरण उनके ही नामानुसार हो गया है। शास्त्रोंमें कहीं-कहीं पुराणोंके रचयिता व्यासदेवको बताया गया है, इसका एकमात्र कारण यह है कि व्यासदेवने उनको प्रकाशित मात्र किया है।

यहाँ पर पुनः प्रश्न उठता है कि—वेदाध्ययनका अधिकार केवल ब्राह्मणको ही है; किन्तु यदि इतिहास और पुराणोंको वेद माना जाता है तो उनका अध्ययन करनेका अधिकार सबको (मानवमात्रको) क्यों है? उसका उत्तर यह है कि—जिस प्रकार श्रीकृष्ण नाम समस्त वेदरूपी कल्पलताका सत्फल होनेपर भी उसमें मानव मात्रका अधिकार है, परन्तु वेदोंमें सबका अधिकार नहीं है। उसी प्रकार इतिहास और पुराण साक्षात् वेद होने पर भी उनमें सबका अधिकार है।

स्कन्द पुराणके प्रभास खण्डमें कृष्णनामके संबंध-में कहा है—

मधुरमधुरमेतन्मंगलं मंगलानां
सकल निगमवल्ली सत्फलं चित्स्वरूपम्।
सकृदपि परिगीतं श्रद्धया हेलया वा
भृगुवर! नरमात्रं तारयेत् कृष्णनाम॥

हे भृगु श्रेष्ठ! मधुरसे भी सुमधुर समस्त प्रकार-के कल्याणोंका कल्याण स्वरूप ज्ञान-स्वरूप एवं समस्त

वेदलताका सत्फल श्रीकृष्णनामका श्रद्धापूर्वक हो या अश्रद्धापूर्वक हो एक बार भी उच्चारण करनेसे मनुष्यमात्र ही मुक्तिको प्राप्त हो जाता है। विष्णु धर्मोत्तरमें भी लिखा है—

ऋग्वेदोऽथ यजुर्वेदः सामवेदोऽप्यथर्वणः।
अधीतास्तेन येनोक्तं हरिरित्यक्षरद्वयम्॥

जो 'हरि'—केवल इन दो अक्षरोंका उच्चारण कर लेता है उसका ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद-सबका अध्ययन करना हो जाता है।

इतिहास और पुराण साक्षात् वेद हैं तथा वे ऋग्वेदादि वेदोंके अर्थ निर्णायक हैं। यह बात पहले ही कही जा चुकी है। इनमें से इतिहास और पुराण साक्षात् वेद हैं—यह बात सिद्ध हो चुकी है। अब इतिहास और पुराण वेदार्थ निर्णायक शास्त्र हैं—यह दिखलाया जा रहा है। विष्णु पुराणमें कहते हैं—भगवान् श्रीव्यासदेवजीने महाभारतमें समस्त वेदोंका अर्थ प्रकाशित किये हैं। नारद पुराणमें भी कहा है—

वेदाः प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः।

अर्थात् समस्त वेद पुराणोंमें सन्निहित हैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है।

यद्यपि मनु इत्यादि ऋषियों द्वारा प्रकटित स्मृति आदि शास्त्र यथार्थ प्रकाशक हैं तथापि साक्षात् भगवान व्यासदेव द्वारा प्रकाशित इतिहास और पुराणोंकी श्रेष्ठता और वैशिष्ट्य स्मृति शास्त्रोंसे कहीं अधिक बढ़कर है। पद्म पुराणमें भी लिखा है कि "वेदव्यास जो जानते हैं उसको ब्रह्मादि देवता लोग भी नहीं जानते हैं; किन्तु जिसे ब्रह्मादि देवता लोग जानते हैं, उसको वेदव्यासजी जानते हैं।"

स्कन्द पुराणमें भी कहा है—जिस प्रकार गृहस्थके घरसे कोई व्यक्ति किंचितमात्र धन लेकर व्यवहारमें लाता है, उसके घरका सब सामान व्यवहार नहीं कर सकता है, उसी प्रकार श्रीव्यासदेवजीके हृदयस्थित तत्त्वका कुछ अंश ही ब्रह्मादि देवतागण व्यवहारमें लाते हैं।

विष्णु पुराणमें श्रीपराशर मुनि भी कहते हैं—हे मैत्रेय! मेरे पुत्र व्यासने वैवस्वत मन्वन्तरके अट्ठाइसवें चतुर्युगमें एक वेदके चार भाग किये हैं, इस बुद्धिमान व्यासने समस्त वेदोंको जिस प्रकार विभक्त किया है तथा उनमें शाखा-भेद किया है, उसीका दूसरे-दूसरे तथा मैं चारों युगोंमें व्यवहार करता हूँ। हे मैत्रेय! कृष्णद्वैपायन व्यासको साक्षात भगवान श्रीनारायण समझो।

स्कन्द पुराणमें भी देखा जाता है—"सत्ययुगमें श्रीनारायण भगवानके मुखारविन्दसे यह ज्ञान उत्पन्न होता है, त्रेता युगमें यह ज्ञान कुछ विकृत हो जाता है, बादमें द्वापर युगमें यह सारा ज्ञान लुप्त हो जानेसे देवता लोग दूसरा कोई उपाय न देखकर ब्रह्मा और शिवजीके साथ शरणागतपालक श्रीनारायणके शरणागत हुए और सब वृतान्त कहा। उनकी बात सुनकर भगवान श्रीहरि पराशरनन्दन व्यासदेवके रूपमें अवतीर्ण हुए एवं वेदादि शास्त्रोंका पुनरुद्धार किये।"

अतएव वेदोंका अर्थ प्रकाश करनेवाले इतिहास पुराणोंको पंचम वेद मानना ही कल्याणप्रद है। विचार कर देखनेसे वेदोंकी अपेक्षा पुराणोंका ही गौरव अधिक दृष्टिगोचर होता है। श्रीनारद पुराण में कहते हैं—

वेदार्थादधिकं मन्ये पुराणार्थं वरानने।
वेदा प्रतिष्ठिताः सर्वे पुराणे नात्र संशयः॥
पुराणमन्यथा कृत्वा तिर्यग् योनिमवाप्नुयात्।
सुदान्तोऽपि स्वशान्तोऽपि न गतिं क्वचिदाप्नुयात्॥

(श्रीमहादेवजी पार्वतीजीसे कहते हैं—हे सुमुखी! मैं तो वेदार्थसे भी पुराणार्थको अधिक समझता हूँ। क्योंकि वेदोंका सभी पुराणोंमें सन्निवेश है, इसमें

तनिक भी सन्देह नहीं है। जो लोग पुराणोंकी उपेक्षा करते हैं वे जितेन्द्रिय और धार्मिक होनेपर भी पक्षीका जन्म प्राप्त करते हैं। उन लोगोंकी सद्गति होनेकी कोई सम्भावना नहीं। स्कन्द पुराण प्रभास खण्डमें में भी देखा जाता है—

वेदवद्विश्वसं मन्ये पुराणार्थं द्विजोत्तमाः।
वेदाः प्रतिष्ठिता सर्वे पुराणे नात्र संशयः॥
विभेत्यल्पश्रुताद्वेदो मामयं वाक्षयिष्यति।
इतिहास पुराणैस्तु निश्चलोऽयं कृताः पुरा॥
यन्न दृष्टं हि वेदेषु तद्दृष्टं स्मृतिषु द्विजाः।
उभयोर्यन्न दृष्टं हि तत् पुराणै प्रगीयते॥
यो वेद चतुरो वेदान् सांगोपनिषदो द्विजाः।
पुराणं नैव जानाति न च स स्याद्विचक्षणः॥

ब्राह्मणों! मैं वेदोंकी तरह पुराणोंको भी सर्वसम्मत और नित्य सत्य मानता हूँ। पुराणोंकी उपेक्षा करनेसे वेदार्थ कभी भी उपलब्ध नहीं हो सकता; क्योंकि वेदका अर्थ पुराणोंमें प्रकाशित है, इसमें तनिक भी संशय नहीं, पुराणोंका बिना अध्ययन किये वेदोंका अर्थ समझना असम्भव है। इतिहास और पुराणों द्वारा जिनका वैदिक सिद्धान्त दृढ़ नहीं होता, उन अल्पज्ञोंसे वेदमाताको भी डर लगता है। क्योंकि जिस प्रकार अल्पज्ञ मूर्ख पुत्रकी तरफसे पूजनीया जननी पर प्रहार होना सम्भव है, उसी प्रकार इतिहास और पुराण अनभिज्ञ व्यक्ति द्वारा वेदोंका कदर्थ होना भी सम्भव है। इतिहास और पुराणोंमें ही वेदोंका वास्तविक अर्थ प्रकाशित है। उनका विपरीत अर्थ करनेसे वेदोंका ही विकृत अर्थ करना है। हे द्विजो! वेदोंमें जिन विषयोंका स्पष्ट रूपसे वर्णन नहीं है, उसका स्मृतियोंमें वर्णन है, स्मृति वचनोंसे अस्फुट वेदमंत्रोंका भी स्पष्टीकरण हो जाता है। स्मृतिमें भी जो विषय स्पष्ट नहीं है, वह पुराण वचनोंमें स्पष्ट है। इसलिये जो लोग साम आदि वेद और उपनिषद तो पढ़ चुके हैं, परन्तु पुराणोंको नहीं मानते उनको बुद्धिमान नहीं कहा जा सकता है। अब यह सिद्ध हो गया कि तत्त्व निर्णयके सम्बन्धमें पुराण शास्त्र ही यथार्थ प्रमाण हैं, परन्तु आजकल पुराण ठीक-ठीक प्रचलित न होनेके कारण तथा भिन्न-भिन्न पुराण भिन्न-भिन्न देवताओंके प्रतिपादक होनेके कारण अल्पज्ञ जनसाधारणके लिये वेदों की भाँति पुराणोंका तात्पर्य निर्णय कर लेना बड़ा ही कठिन है। क्योंकि मत्स्य पुराणमें भी कहा है—

सात्विक पुराण शास्त्रोंमें श्रीहरिका माहात्म्य अधिक रूपमें वर्णित है, राजस पुराणोंमें ब्रह्माजीका और तामस पुराणोंमें अग्नि, दुर्गा और शिव आदि तामस देवताओंका; मिश्रित शास्त्रोंमें अर्थात् सात्विक राजिमक तामिसक गुणोंवाले पुराणोंमें सरस्वती और पितृ पुरुषोंका माहात्म्य अधिक बतलाया गया है। अतएव इस प्रकारके पुराणोंमें कौन सा पुराण श्रेष्ठ है और किस पुराणके अनुसार उपासना करनी उत्तम है? इसका उत्तर यह है कि—"सत्वात् संजायते ज्ञानं" सत्त्वं यद् ब्रह्मदर्शनम्" अर्थात् सत्वसे ज्ञान प्राप्त होता है और सत्यसे ही ब्रह्माका साक्षात्कार होता है—इस न्यायके अनुसार सात्विक पुराण ही परमार्थका निरूपण करनेमें यथार्थ प्रमाण माने गये हैं। किन्तु सात्विक पुराणोंमें भी भगवतस्वरूपकी प्राप्तिके साधन भिन्न-भिन्न रूपमें बतलाये गये हैं। अतः फिर प्रश्न होता है कि सात्विक पुराणोंमें भी कौनसा पुराण सर्वश्रेष्ठ है। ऐसी दशामें संशय करनेवाले व्यक्तियोंके संशयको दूर करनेका क्या उपाय है? यद्यपि वेद और पुराणोंका सुस्पष्टरूपमें अर्थ समझनेके लिये भगवान् श्रीव्यासदेव जीने ब्रह्मसूत्रकी रचना की है और उसके द्वारा ही परमार्थको भलिभाँति समझा जा सकता है, परन्तु उसके सम्बन्धमें भी भिन्न-भिन्न प्रकारके मत हैं। क्योंकि उसके सूत्रोंमें थोड़े ही शब्दों में गागरमें सागरकी भाँति अत्यन्त गूढ़तम अनेक भाव भरे होनेके कारण कोई-कोई उन सूत्रोंका विरुद्ध या कल्पित अर्थ बतला कर जन-साधारणको विभ्रान्त करते हैं। इसीलिये तो कहता हूँ, यथार्थ निर्णय करने तथा नाना प्रकारके संशयोंका समाधान करनेका उपाय क्या है? हाँ यदि कोई ऐसा सर्वोत्तम पुराण हो, ऐसा

सर्वश्रेष्ठ पुराणरूप अपौरुषेय ग्रन्थ हो जिसमें वेद, इतिहास और पुराणोंका सारार्थ भरा हो तो उसके द्वारा ही वास्तव सिद्धान्तका निर्णय किया जा सकता है ।

इसके सम्बन्धमें श्रील जीव गोस्वामी कहते हैं—सर्व-प्रमाण चक्रवर्ती स्वरूप श्रीमद्भागवत महापुराण ही ऐसे सर्वश्रेष्ठ पुराण है । भगवान श्रीव्यासदेवजीको चार वेद, छः शास्त्र, १८ पुराण एवं १०८ उपनिषदोंको संकलन कर देने पर भी सन्तोष नहीं मिला । अन्तमें समाधिस्थ हो श्रीमद्भागतको प्रकाश किया । मत्स्य-पुराणमें भी श्रीमद्भागवतका स्वरूप बतलाया है—जिस पुराणमें गायत्रीको आधारशिला मान कर धर्मका विस्तृत रूपमें वर्णन है और जिसमें वृत्रासुर वधका प्रसङ्ग विद्यमान है, उसीको श्रीमद्भागवत कहते हैं । जो व्यक्ति भाद्रमासमें स्वर्ण-निर्मित सिंहासनपर श्रीमद्भागवतको स्थापनकर दान करता है, वह निश्चय ही वैकुण्ठधाममें गमन करता है ।

श्रीमद्भागवत—भगवान और भक्त दोनोंके बड़े ही प्रिय हैं । पद्मपुराणमें महर्षि गौतमजी महाराज अम्बरीषसे पूछते हैं—राजन् ! क्या आप भगवान् श्रीहरिके सामने श्रीभागवत पुराणका और उसमें भी भक्त प्रह्लादका उपाख्यानका पाठ तो करते हैं ? अन्यत्र उसी पुराणमें वे व्यंजुली द्वादशीके प्रसङ्गमें उन अम्बरीष महाराजसे कहते हैं—हे राजन् ! विष्णुकी प्रीतिके लिये रात्रि-जागरण, हरिकथा श्रवण गीता, विष्णु-सहस्रनाम और श्रीशुकदेव द्वारा कथित भागवत पुराणका पाठ करना कर्त्तव्य है । पद्म पुराणमें और भी कहा है—

अम्बरीष ! शुकप्रोक्तं नित्यं भागवतं शृणु ।
पठस्वं स्वमुखेनापि यदिच्छसि भवक्षयम् ॥

अम्बरीष ! यदि तुम संसारसे मुक्त होना चाहते हो, तो प्रति दिन श्रीशुकदेवके मुख से कहे गये श्रीमद्भागवतका अवश्यमेव श्रवण करो ।

स्कन्दपुराणमें भी कहा है—

श्रीमद्भागवतं भक्त्या पठते हरिसन्निधौ ।
जागरे तत्पदं याति कुलवृन्द-समन्वितः ॥

जो हरिवासर (एकादशी) को श्रीहरिके समीप श्रीमद्भागवतका पाठ करता हुआ रात्रि-जागरण करता है, अपने कुलके साथ वैकुण्ठधामको प्राप्त होता है ।

गरुड़ पुराणमें भी कहते हैं—

पूर्णः सोऽयमतिशयः ।
अर्थोऽयं ब्रह्मसूत्राणां भारतार्थविनिर्णयः ।
गायत्री-भाष्यरूपोऽसौ वेदार्थं परिबृंहितः ॥
पुराणानां सामरूपः साक्षाद्भागवतोदितः ।
द्वादशस्कन्धयुक्तोऽयं शत विच्छेद-संयुतः
ग्रन्थोऽष्टादश साहस्रः श्रीमद्भागवताभिधः ॥

अर्थात् श्रीमद्भागवत परिपूर्ण वस्तु हैं । इसमें ब्रह्मसूत्रका अर्थ और महाभारतका तात्पर्य विशेषरूपसे निर्णित हुआ है । यह गायत्रीका भाष्यस्वरूप भी है । श्रीमद्भागवतमें वेदोंका अर्थ भी परिस्फूट है । जिस प्रकार वेदोंमें सामवेद श्रेष्ठ है, उसी प्रकार पुराणोंमें श्रीमद्भागवत प्रधान हैं । यह साक्षात भगवानकी वाणी है । इसमें बारह स्कन्द, ३३५ अध्याय और अट्ठारह हजार श्लोक हैं ।

स्कन्दपुराणमें भी श्रीमद्भागवतको सर्वश्रेष्ठ पुराण कहा गया है—

शतशोऽथ सहस्रैश्च किमन्यैः शास्त्र संग्रहैः ।
न यस्य तिष्ठते गेहे शास्त्रं भागवतं कलौ ॥
कथं स वैष्णवो ज्ञेयः शास्त्रं भागवतं कलौ ।
गृहे न तिष्ठते यस्य स विप्रः श्वपचाधमः ॥
यत्र-यत्र भवेद् विप्र ! शास्त्रं भागवतं कलौ ।
तत्र-तत्र हरिर्याति त्रिदशैः सह नारद ॥
यः पठेत् प्रयतो नित्यं श्लोकं भागवतं मुने ।
अष्टादश पुराणानां फलं प्राप्नोति मानवः ॥

—कलियुगमें जिस व्यक्तिके घरमें श्रीमद्भागवत नहीं होते, वह दूसरे हजार-हजार ग्रन्थोंका संग्रह करके भी अपना कुछ भी कल्याण नहीं कर सकता। कलियुगमें जिस ब्राह्मणके घरमें श्रीमद्भागवत नहीं होते वह भला कैसे वैष्णव कहा जा सकता है? वैसा ब्राह्मण तो चण्डालसे भी अधिक नीच होता है। हे विप्र नारद! कलियुगमें जहाँ-जहाँ श्रीमद्भागवत विराजमान होते हैं, वहाँ-वहाँ भगवान् श्रीहरि अपने नित्यपार्षदोंके साथ पधारते हैं। हे मुने! जो व्यक्ति यत्नपूर्वक प्रतिदिन श्रीमद्भागवतके श्लोकोंका पाठ करता है, उसको अठारहों पुराणोंके पाठ करनेका फल प्राप्त होता है।

प्रसिद्ध हेमाद्रिकारने भी कहा है—

वेदाः पुराणं काव्यञ्च प्रभुर्मित्रं प्रियेव च।
बोधयन्तीति प्राहुस्त्रिवृद्भागवतं पुनः॥

अर्थात् वेद, पुराण और काव्य—ये क्रमशः प्रभु, मित्र और प्रेयसीकी भाँति हितका बोध कराते हैं। परन्तु श्रीमद्भागवत उक्त वेद आदि तीनोंके गुणोंसे युक्त रहनेके कारण अकेले ही तीनों शास्त्रोंकी भाँति हितोपदेश करते हैं।

श्रीश्रीगौर-कृष्णके नित्यपार्षद श्रीजीव गोस्वामी ने भी अपने श्रीतत्त्वसन्दर्भ नामक ग्रन्थमें श्रीमद्भागवतको अमल पुराण तथा शास्त्र-शिरोमणि प्रमाणित किया है। जगद्गुरु श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने भी स्वरचित प्रसिद्ध श्लोकमें श्रीमद्भागवतको अमल प्रमाण बतलाया है—

आराध्यो भगवान् व्रजेशतनयस्तद्धाम वृन्दावनं
रम्या काचिदुपासना व्रजवधूवर्गेण या कल्पिता।
श्रीमद्भागवतं प्रमाणममलं प्रेमा पुमर्थो महान्
श्रीचैतन्यमहाप्रभोर्मतमिदं तत्रादरो नः परः॥

—त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति प्रकाशपुरी महाराज

(अनुवादक—श्रीसत्यपाल ब्रह्मचारी)

जीवकी सार्थकता

जीव जब तक माताके गर्भमें रहता है, तब तक उसे यह ज्ञान रहता है कि मैं भगवान्का अंश हूँ, भगवान् मेरे स्वामी हैं। मैं गर्भसे बाहर होकर भगवान्को कभी नहीं भूलूँगा। हे भगवन् आप मुझे गर्भकी यन्त्रणासे मुक्त करें—ऐसी स्तुति करता रहता है, जिसका विस्तारसे श्रीमद्भागवतके कपिल-देवहूति संवादमें वर्णन है।

परन्तु जब वह मातृ गर्भसे निकल कर संसारमें जन्म ले लेता है, तभीसे वह वास्तविक ज्ञान, जिसे व्यापक अर्थमें विज्ञान कह सकते हैं उससे रहित हो जाता है।

विद्वानोंने ज्ञानका दो प्रकारसे विभाजन किया है एक साधारण ज्ञान, जो मनुष्यसे लेकर उद्भिज, अण्डज, स्वेदज, आदि छोटे-बड़े सभी जीव-जन्तुओंमें होता है।

जैसे—

आहार निद्रा भय मैथुनं च।
सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्॥

दूसरा विशेष ज्ञान होता है जिसे विज्ञान कहा है। यह विज्ञान संस्कृति सम्पन्न बुद्धिवादी जीवोंमें ही होता है।

किन्तु विज्ञानके भी दो रूप हमारे दृष्टि पथमें आते हैं—एक संकुचित विज्ञान और दूसरा व्यापक विज्ञान। संकुचित-विज्ञान आज भौतिक विज्ञानके कलेवरमें पनप रहा है।

उस विज्ञानसे पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश एवं तत्सम्बन्धी तत्त्वोंका विशेष ज्ञान ही व्यवहारमें आता है। यदि विज्ञानसे हम भौतिक विज्ञान ही समझ कर आगे बढ़ें, तो यह हमारे लिये अपूर्ण सी जानकारी रहेगी।

वास्तवमें विज्ञानका व्यापक स्वरूप ही हमारा चरम लक्ष्य है। भौतिक विज्ञानके साथ आध्यात्मिक विज्ञानका ज्ञान ही व्यापक विज्ञान है। जिस विज्ञानमें जीव किसे कहते हैं? ब्रह्मका स्वरूप कैसा है? मायिक पदार्थ क्या हैं? उनका पारस्परिक सम्बन्ध कैसा है? जीवकी किस प्रकारकी गति है? उसकी उत्पत्ति कहाँ से हुई? उसका नित्यधर्म क्या है? वह मायिक जड़ीय पदार्थोंसे किस प्रकार आबद्ध है? उसका चरम लक्ष्य क्या है? उसको शाश्वतिक शान्ति कहाँ जाकर प्राप्त होगी?—इन सभी बातोंका पूर्णरूपेण ज्ञान प्राप्त हो, उसीको हम व्यापक रूपमें विज्ञान या वास्तविक विज्ञान कहते हैं। इसीमें मनुष्यकी सार्थकता या महत्ता है।

भौतिक या जड़ीय विज्ञानका अन्वेषण करनेवाले जीव भौतिक पदार्थोंके आमूल विश्लेषणमें ही अपनी आयुके बृहत् भागका व्यय कर डालते हैं। वे अखिल ब्रह्माण्डके एक छोटेसे किसी तत्त्वकी अपूर्ण जानकारी प्राप्त कर बीचमें ही रुक जाते हैं और प्रकृतिको ही स्वयं संभूत सिद्ध कर उसके निर्माताका अन्वेषण न कर प्रकृतिवादके चक्रमें फँस जाते हैं। वे जगन्नियन्ता सर्वतन्त्र स्वतन्त्र सच्चिदानन्द रसमय स्वरूप गुणैकधाम प्रभु श्रीकृष्णको भूल जाते हैं या वे उनके ध्यानमें ही नहीं आते, न वे यही जानते हैं कि—

> यद् भयात् वाति वातोयं सूर्यस्तपति यद् भयात्।
> वर्षतीन्द्रो दहत्यग्नि मृत्युर्धावति पञ्चमः॥

ऐसे भगवान्से बहिर्मुख जीव बद्ध जीवोंकी श्रेणीमें गिने जाते हैं। क्योंकि मायिक पदार्थोंका निरन्तर अनुशीलन ही उनका चरम ध्येय रहता है। वह जड़ीय पदार्थोंको अपनी इच्छाके अनुसार परिवर्तित कर सुख भोगका साधन जुटाते रहते हैं। धीरे-धीरे उनसे कर्त्तव्याकर्त्तव्यका ज्ञान दूर हो जाता है। वे "किकर्म किम कर्मेति" का स्मरण नहीं रख सकते, सदाचारसे बहुत दूर पड़ जाते हैं तथा आसुरी प्रवृत्तिके पाशमें फँस जाते हैं। जिसका कि स्वरूप भगवद्गीतामें इस प्रकार वर्णित है—

> प्रवृत्तिञ्च निवृत्तिञ्च जना न विदुरासुराः।
> न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते॥
> (१६।७)

वे धर्मका वास्तविक स्वरूप ही नहीं जानते, इससे उसमें प्रवृत्त भी नहीं होते, न उन्हें अधर्मका ही ज्ञान होता है। शारीरिक या मानसिक अथवा वाचिक पवित्रता भी उनसे दूर हो जाती है, कौनसा व्यवहार करने योग्य है, कौनसा नहीं—यह भी उनके स्मृतिपथमें नहीं आता; सत्यका व्यवहार तो वे करने ही क्यों लगे—

> असत्यमप्रतिष्ठन्ते जगदाहुरनीश्वरम्।
> अपरस्परसंभूतं किमन्यत् कामहेतुकम्॥
> एतां दृष्टिमवष्टभ्य नष्टात्मानोऽल्पबुद्धयः।
> प्रभवन्त्युग्रकर्माणः क्षयाय जगतोऽहिताः॥
> काममाश्रित्य दुष्पूरं दम्भ मान मदान्विताः।
> मोहाद्गृहीत्वा सद्ग्राहान् प्रवर्तन्तेऽशुचिव्रताः॥

ऐसे जन वेदादि प्रमाणभूत ग्रन्थोंको प्रमाण नहीं मानते, असत्य मानते हैं। और निःसंकोच भावसे कहते हैं, विचार नहीं करते "त्रयो वेदस्य कर्तारः भण्डधूर्त निशाचराः" वे धर्माधर्म रूप प्रतिष्ठासे रहित होते हैं। जगतको विचित्रताकी खान मानते हैं। उसका कर्ता, व्यवस्थापक या ईश्वर किसीको भी नहीं मानते, स्त्री पुरुषके मिथुनसे ही जगतका निर्माण होता है। इसका दूसरा कोई कारण नहीं, स्त्री पुरुषोंका काम ही इसका कारण है। इस प्रकारकी दृष्टिके वशीभूत होकर जिनका चित्त मलिन होगया है, अल्प बुद्धिके कारण प्रत्यक्ष सामने देखी हुई वस्तु पर ह१

जो विश्वास करते हैं, वे हिंसाके कर्मसे युक्त हो मनुष्योंके वैरी बनकर जगत्के नाशके कारण बनते हैं।

जिस कामकी कभी पूर्ति न हो सके ऐसेका आश्रय लेकर दम्भ, मान, मदसे पूर्ण हो क्षुद्र एवं हीन देवताओंकी आराधनामें तत्पर होते हैं, मोहसे असत् मन्त्रोंका या अनुचित उपायोंका आचरण कर महानिधि प्राप्त करनेकी इच्छा करते हैं। मद्य-मांस आदि वस्तुओंका उपयोग कर अशुचि व्रत धारण करते हैं। तथा सैकड़ों आशारूपी पाशमें बंध जाते हैं। काम क्रोधमें लिप्त हो काम भोगोंकी प्राप्तिके लिये ही अन्यायसे धनका संचय करते हैं। अपनेको ही सिद्ध बलवान् सुखी भोगी सिद्ध मानकर अपूर्वताका परिचय देते हैं। आपने समकक्ष किसीको भी नहीं मानते, इस प्रकारके आसुरी भावापन्न जीव युगों-युगों तक भगवान्से विमुख रहते हैं।

दूसरा मुक्त जीव होता है। वह विशेषतः चित् जगतमें ही निवास करता है। परन्तु कभी यदि थोड़ा भी मायाके सम्मुख हो जाता है तो विभिन्न प्रकारके कर्म मार्गमें प्रवृत्त हो वही अभिलषित वस्तुएँ प्राप्त करनेमें अपने समयका उपयोग करता है। उससे स्वर्गादि सुख चाहता है, पुत्र-पौत्रादिकी इच्छा करता है तथा अनेक प्रकारके भोगको प्राप्त करना चाहता है।

यही बातें ज्ञानमार्गीयोंके लिये भी कही जा सकती हैं। ज्ञान मार्गी या तो योगका आश्रय लेकर अणिमा, गरिमा, लघिमा आदि सिद्धियोंके अधीन हो अपनेको ही सब कुछ मान लेता है या ज्ञानके अभिमानमें चूर हो अपनेको "अहं ब्रह्मास्मि" कहकर दूसरोंकी प्रताड़नाके लिये अग्रसर हो जाता है। चमत्कारोंकी चकाचौंधमें दूसरोंको ही भुलावेमें नहीं डालता, स्वयं भी अपने पदसे गिरकर चकनाचूर हो जाता है।

ऐसा प्रायः कर्ममार्गी एवं ज्ञान मार्गी मुक्त जीवोंके जीवनसे देखा जाता है।

वास्तवमें भक्ति मार्ग ही एक ऐसा मार्ग है जिसमें यदि जीवका वास्तविक रूपमें प्रवेश हो जाता है, वह अपनी जीवनकी नैयाकी डोरी यदि भगवान्के चरणारविन्दोंसे बाँध देता है, अनन्य रूपसे शरणागति प्राप्त कर लेता है, प्रभुका अकिञ्चन दास बनकर—

तृणादपि सुनीचेन तरोरिव सहिष्णुना
अमानिना मानदेन.....

होकर अकुतोभय हो श्रीकृष्णकी वैधि भक्तिके—

श्रवणं कीर्तनं विष्णो स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्॥

का आश्रय ले भावोंके परिवृद्ध होनेपर व्रजगोपियोंकी भाँति—

तन्मनस्कास्तदालापास्तद्विचेष्टास्तदात्मिकाः।
तद्गुणानेव गायन्त्यो नात्मागाराणि सस्मरुः॥

की स्थिति पर पहुँच जाता है, तब उसे अपने स्वरूपका ज्ञान होता है। उसमें दैवी गुण प्रकट होते हैं—

अहिंसा सत्यमस्तेयं त्यागः शान्तिरपैशुनं।
दया भूतेषु लोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचं अद्रोहोनातिमानता।
भवन्ति संपदं दैवी.....॥

तब उसे व्यापक विज्ञानका बोध हो चुका है, समझा जाता है। ऐसा जन प्रभुका पूर्णरूपेण पारिवारिक जन बन जाता है। वह कृतार्थ हो जाता है। उसको सार्थकता प्राप्त होती है।

पर यह स्थिति बिरले भाग्यवानको ही प्राप्त होती है। भगवान् श्रीकृष्णने स्वयं श्रीमुखसे कहा है—

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिन्मां वेत्ति तत्त्वतः॥

अतः इस रूपको प्राप्त करनेके लिये हमें वैष्णव भक्त जनों एवं सद्गुरुके आनुगत्यमें रहकर सर्वतोभावसे साधनमें जुट जाना है। श्रीकृष्णका तैलधारावत निरन्तर स्मरण करते रहना है तभी वह अनुपम प्रसाद प्राप्त होगा और हम कृतार्थ होंगे अन्यथा नहीं।

—श्रीबागरोडी कृष्णचन्द्र शास्त्री, जयपुर

रूसीभाई और उनकी स्पुटनिक

[पूर्व प्रकाशित वर्ष ७, संख्या २, पृष्ठ ४० से आगे]

सबसे पहले मैं आपको यह ज्ञात कराना चाहता हूँ कि आपके देशके प्रति मेरी विशेष श्रद्धा है। मैं आप लोगोंके साम्यवादके दार्शनिक विचारोंसे सहमत हूँ, यद्यपि वह साम्यवाद केवलमात्र भौतिक शरीरको ही केन्द्र मान कर चलता है। उसके अतिरिक्त और भी बहुत सी बातें हैं जो हमें पसन्द हैं। जैसे आप लोग यह चाहते हैं कि विश्वमें सभी सुख-शान्तिसे रहें। सभी समान हों। इसकी शिक्षा तो हमारे वेदादि शास्त्र भी देते हैं—'सर्वे सुखिना भवन्तु'। हमारा पारमार्थिक समाज भी—जिसमें मैं भी सम्मिलित हूँ—यही चाहता है कि मनुष्य समाज वास्तवमें सुखी हो। हम लोग केवल इसी जन्ममें ही नहीं, अगले और-और जन्मों भी सुखी रहना चाहते हैं। आपलोगोंकी सब बातोंसे सहमत होने पर भी मैं आपके एक विचारसे सहमत नहीं हूँ, वह यह कि आपलोग भगवानको बिलकुल उड़ा देते हैं। यह बात हमें बड़ी चुभती है। आपलोग कुछ हद तक भौतिक उन्नति अवश्य किये हैं, मैं मानता हूँ। परन्तु उनमें कुछ ऐसी भी बातें हैं जो उन्नतिके नाम पर विध्वंसक भी हैं। फिर भी उन सबको उन्नति मान लेने पर यदि आप लोग और भी आगे बढ़ कर भगवानके सम्बन्धमें कुछ समझ सकें तो फिर कहना ही क्या है? आप लोग आदर्श बन जायेंगे।

आपको यह बात समझ लेनी चाहिए कि मैं धर्मका संकुचित अर्थ नहीं ग्रहण करता हूँ। जिस प्रकार भगवान सब प्राणियोंके लिये परमात्मा हैं, उसी प्रकार भगवानका प्रवर्तित धर्म भी सबके लिये एक विशेष कार्य-क्रम है। हम लोग धर्मको केवल वाग-विलासके रूपमें ही रखना नहीं चाहते, वरन् धर्मको क्रियात्मक रूपमें लाना चाहते हैं। बिना धर्मके जीवन क्रियात्मक नहीं हो सकता। धर्म प्रत्येक जीवका एक अत्यावश्यकीय प्रयोजन है। यदि एक व्यक्ति धर्म-जीवनका पालन नहीं करता है, तो ऐसा समझना होगा कि वह व्यक्ति अवश्य ही रागी है। अधार्मिक जीवन दूषित रोगीका जीवन है। धर्मसे स्वभावका बोध होता है। किसी वस्तुके धर्मसे उसके स्वभावको समझना चाहिए। जैसे अग्निका स्वभाव जलाना है; अतः जलना ही आपका धर्म हुआ। उसी प्रकार जलका स्वभाव तरलता है, यही तरलता ही जलका धर्म हुआ। उसी प्रकार जीवका स्वभाव ही जीवका धर्म है। वस्तुके स्वभावको उस वस्तुसे कदापि पृथक नहीं किया जा सकता है। इसे दूसरे शब्दोंमें ऐसा कहा जा सकता है कि वस्तुके धर्मको वस्तुसे किसी प्रकार भी पृथक् नहीं किया जा सकता है। अतः जीवके धर्मको भी जीवसे कदापि अलग नहीं किया जा सकता है अर्थात् जीव बिना धर्मके रह नहीं सकता है।

यहाँ यह भी समझ लेना आवश्यक है कि जलका धर्म तरलता होने पर भी जब किसी विशेष निमित्त-वशतः अर्थात् कारणवशतः वह जम कर बर्फ हो जाता है, तब वह कठिन या सख्त हो जाता है, अब जलका यह बदला हुआ स्वभाव—काठिन्य यथार्थ या स्वाभाविक धर्म नहीं—नैमित्तिक धर्म कहलाता है। निमित्त या कारण दूर होने पर नैमित्तिक धर्म अवश्य ही दूर हो जायगा और स्वाभाविक धर्म प्रकाशित होगा। ठीक उसी प्रकार जीवका भी धर्म है। जीवका स्वाभाविक या नित्य धर्म है—भगवानकी सेवा करना। परन्तु किसी विशेष कारणसे वह अपने

स्वाभाविक धर्मसे हट कर नैमित्तिक धर्ममें पहुँच गया है। मनुष्यका आहार-निद्रा-भय-मैथुन आदि अथवा भौतिक समृद्धि—सब कुछ नैमित्तिक धर्मके अन्तर्गत ही पड़ता है। धर्मका व्यभिचार होनेके कारण—जैसा कि आपने अपने पत्रमें लिखा है—आप लोगोंने धर्मको छोड़ दिया है—यह अस्वाभाविक स्थिति है। इस अस्वाभाविक स्थितिको एक न एक दिन अवश्य ही परिवर्तन करना पड़ेगा—चाहे उसे मैं करूँ या आप स्वयं करें।

धर्म मनुष्यका बनाया हुआ नहीं है। यह साक्षात् भगवानका बनाया हुआ है। इसलिये भगवानकी आज्ञाका पालन करना ही धर्म है। सभी इसका पालन करते हैं, चाहे वे स्वरूपमें करें अथवा विरूपमें करें अर्थात् जिस प्रकार जल चाहे बर्फ बन जाय, चाहे जल ही रहे उसमें तरलता अवश्य ही दिखलायी पड़ेगी।

जीवमात्रका एकमात्र कर्त्तव्य है कि वे भगवानकी सेवा करें। यदि वे भगवानको भूल गये हैं तो भगवानको भूलनेके कारण जो मायाकी स्थिति है; उस मायाकी सेवा उन्हें अवश्य ही करनी पड़ेगी। माया क्या है? जिसका अधिष्ठान तो भगवानमें ही है, परन्तु उसमें भगवानका पता नहीं चलता। इस भौतिक जगतका अधिष्ठान भगवानमें ही है; क्योंकि भगवानसे ही मायाका जन्म होता है, फिर भी न तो भौतिक जगतमें भगवानका संधान है और न भगवानमें भौतिक जगत है। इसलिये आप लोग जो भौतिक जगत् अर्थात् मायाकी सेवा कर रहे हैं वह भी भगवानकी व्यतिरेक सेवा है; परन्तु वह कैसी है, जैसे जल बर्फ बन जाने पर भी उसमें तरल हो जानेकी सर्वदा संभावना विद्यमान रहती है; जलमें तरलता स्वाभाविक है; अस्वाभाविक रूपमें बर्फ बना है, और कृत्रिम या अस्वाभाविक रूपमें ही बर्फको तरल होनेसे रोका जाता है। वैसे ही मानव या आप लोगोंका वास्तविक या स्वाभाविक धर्म ही है भगवान की सेवा करना; परन्तु वर्तमान अवस्थामें आपलोग भगवानको नहीं मानते हैं, यह अस्वाभाविक है। इस अस्वाभाविक अवस्थाको दूर करना है। जिस समय अस्वाभाविक या कृत्रिम भाव दूर हो जायगा, उसी समय स्वाभाविक रूपमें भगवत् सेवाकी क्रिया प्रारम्भ हो जायगी। यही हमारा स्वाभाविक धर्म है। एकमात्र यही धर्मका स्वाभाविक या सहज अर्थ है। विज्ञान द्वारा आपलोग जो सेवा कर रहे हैं उसकी परिसमाप्ति तभी होगी जब आप लोग एकान्तरूपमें भगवानकी सेवा करने योग्य हो जायेंगे। आपलोग अनेक प्रयत्न करके भी वैज्ञानिक पद्धतिसे जीवात्माके स्वरूपका निर्णय नहीं कर पाये हैं और कभी कर भी नहीं पायेंगे—यह नग्न सत्य है। परन्तु आप जिन्हें पुरानी पोथियाँ कहते हैं, उनमेंसे श्रीमद्भगवद्गीतामें जीवात्माका स्वरूप निर्णय किया गया है। उसमें कहा गया है कि जीवात्मा अजर-अमर है। शरीर नष्ट हो जाने पर भी जीवात्मा जीवित रहता है। उसमें और भी बतलाया गया है कि जैसे मनुष्य अपने कपड़ोंको बदलता रहता है उसी प्रकार जीवात्मा भी शरीररूपी कपड़ोंको बार-बार बदलता रहता है।

भौतिक विज्ञानने जीवात्माका स्वरूप नहीं बतलाया है और यदि बतलाया भी होगा तो वह असम्पूर्ण है—क्रियात्मक नहीं। यदि भौतिक द्रव्योंके समिश्रणसे जीवात्मा बन सकती तो भौतिक विज्ञानने आज तक जीवात्माको क्यों नहीं बनाया? इसलिये आपको यह मानना ही होगा कि भौतिक विज्ञान जीवात्माकी समस्या हल करनेमें असमर्थ रहा है तथा यह भी भूल जाइये कि आप भविष्यमें अमर बन जायेंगे। आप लोग भविष्यमें चन्द्रलोक जायेंगे, ऐसा सोचते हैं, इसके लिये प्रयत्न करते हैं, परन्तु आज तक न तो आप चन्द्रलोकमें पहुँच सके हैं, न किसी मनुष्य या पशु-पक्षी आदिको अमर बना सके हैं और न अपनी लेबोरेटरीमें एक चींटी जैसी छोटी सी जीवात्माका शरीर ही बना सके हैं। यदि आप जीवात्माकी समस्या हल कर लिये होते तो आपके लेलिन महोदय नहीं मरते अथवा आप अपनी लेबो-

रेटरीमें एक दूसरे लेलिनको बना दिये होते या रूसका एक भी मनुष्य नहीं मरता। यदि आप इस कामको कर लिये होते तो वह स्पुटनिक छोड़नेके कामसे अधिक महत्वका काम होता। इसलिये मैं स्पुटनिकको एक खिलौना ही समझता हूँ।

आपलोग जिस कामको अधिकसे अधिक सहज समझते हैं, उसीमें हाथ देते हैं; परन्तु जिस कामको कठिन समझते हैं, उसमें हाथ नहीं लगाते। और क्योंकि इस समय संसारमें सर्वत्र भौतिकवादी मूर्ख लोग ही अधिक हैं, इसलिये आपको उनके हाथों की तालियाँ खूब मिल रही हैं। आप इसीमें सन्तुष्ट हैं, सुखी है। जब आप शरीर बदलनेवाले जीवात्मा को समझ लेंगे और उनके शरीर बदलने वाले रोगको निर्णय करके उसका निदान ढूढ़ निकालेंगे, तभी आप समझ सकेंगे कि धर्म क्या चीज है। अभी तो आप हम लोगोंसे सुन रखिये कि जीवात्मा अमर है और उनका बदलनेवाला शरीर ही भौतिक पदार्थोंसे बना है। जीवात्मा भौतिक पदार्थों से बना हुआ नहीं है। इसलिये आप जीवात्माकी समस्याको भौतिक विज्ञान द्वारा कदापि हल नहीं कर सकेंगे।

जब आप जीवात्माको समझ पायेंगे, तभी उसका स्वरूप भी जान लेंगे तथा उसका क्या कर्तव्य है, यह भी जान पायेंगे। जिनकी दौड़ केवल शरीर या मन तक ही सीमित है, उनके लिये आत्मधर्मको समझना कठिन ही नहीं असम्भव है। शरीर और मनके आधार पर बने हुए जितने भी धर्म हैं, वे नाममात्रके धर्म हैं। शास्त्रोंमें ऐसे-ऐसे धर्मोंको कपट धर्म कहा गया है। कपट धर्म-समूह देश काल और पात्रके अधीन सामयिक क्रियामात्र हैं, उन पर माया का अवश्य ही प्रभाव होगा।

आप लोग शरीरसे सम्बन्धित जिस सोविएट साम्यवादका प्रचार कर रहे हैं, वह एक तात्कालिक-धर्म है जिसे सभी स्वीकार नहीं करते हैं। परन्तु हमलोग जिस धर्मको मानते हैं; उसको सभी देशोंके लोगोंसे, सब समयमें मान्यता प्राप्त है। यदि मैं इस शरीरको छोड़ कर किसी दूसरे देशमें दूसरा शरीर धारण कर लूँ, तब भी हमारा नित्यधर्म हमारे साथ जायगा। मैं धर्मके सम्बन्धमें अभी आपको केवल इतना ही बतलाऊँगा। यह धर्म एक भारी महत्वपूर्ण विज्ञान है और आप यदि इस विषयमें विशेष उत्साह दिखलायेंगे तो आगे हम सर्वदा आपकी सेवाके लिये प्रस्तुत हैं।

आपने जो यह बात कही है कि मैंने आपका बालकोचित कुछ दार्शनिक विचारोंको समझानेकी चेष्टा की है, उसके सम्बन्धमें मुझे यह कहना है कि आपका कथन बिलकुल सही है। क्योंकि जो वैज्ञानिक मनुष्यको अमर बनानेका प्रयास कर रहे हैं, वे अवश्य ही शिशु हैं, अन्यथा वे इस प्रकार प्रलाप क्यों करते? यदि आप एक फलको भी अमर बना देंगे, तभी मैं समझूँगा कि आप मनुष्यको भी अमर बना देंगे। जब तक आप एक फलको अमर नहीं बना देते तब तक आपका यह कहना कि हम विज्ञान-द्वारा मनुष्यको अमर बना देंगे—यह बच्चोंके सुनने योग्य कहानीके अतिरिक्त और क्या है?

आप यह समझना चाहते हैं कि प्राकृतिक नियम कैसे बने हैं? यह बड़ी ही उत्तम जिज्ञासा है। परन्तु आप घर पर बैठे बैठे कानून कैसे सीख सकते हैं! यदि आप साधारण राष्ट्रीय कानूनको समझना चाहते हैं तो आपको लॉ-कालेजमें भर्त्ति होना पड़ेगा। कहनेका तात्पर्य यह है कि घर बैठे बिना उपयुक्त उपायका अवलम्बन किये कोई कानून कैसे पढ़ सकता है? जो कानूनके एक्सपर्ट हैं, उनसे अर्थात् गुरुसे ही आप कानून पढ़ या समझ सकते हैं। परन्तु एक बात तो आपको मैं ही समझा दूँगा। यदि आप प्राकृतिक नियम अर्थात् कानूनको तोड़ देंगे, तो आपको अवश्य ही सजा मिलेगी, जिस प्रकार सरकारी कानूनका उल्लंघन करने पर सजा

मिलती है। उदाहरण-स्वरूप आप यदि प्राकृतिक नियमोंका उल्लंघन कर—तोड़-फोड़ कर आवश्यकता से अधिक भोजन कर लेते हैं, तो उसके लिये प्रकृति आपको अवश्य ही दण्ड देगी—आपको अजीर्ण रोग हो जाता है, पेटमें दर्द हो जाता है, दो दिनों तक आपका भोजन बन्द हो जाता है। यही नहीं चिकित्साके रूपमें डाक्टरोंको कुछ आर्थिक जुर्माना भी देना पड़ता है। इस साधारण उदाहरणसे ही आपको और आगे क्या-क्या दण्ड भोगना पड़ता है—आप स्वयं समझ सकते हैं—कभी-कभी तो इससे अपने जीवनसे भी हाथ धोना पड़ जाता है।

आजकल संसार भरमें जो अशान्तिका वातावरण छाया हुआ है, उसका एक ही कारण है, वह यह कि आज प्राकृतिक नियमोंको तोड़ने-फोड़नेवाले लोगोंकी संख्या अधिकसे अधिक बढ़ गयी है। सम्पूर्ण विश्व प्राकृतिक नियमोंको तोड़नेवालोंका एक महासंघ बना गया है। तभी तो उन सबको दण्ड देनेके लिये हरएक दस-बीस बरसोंमें एक लड़ाई होती है जिसमें करोड़ोंकी जानें बरबाद हो जाती हैं। परन्तु इतना होने पर भी मूर्ख लोग प्राकृतिक कानूनों को तोड़ते ही रहते हैं और अशान्ति तथा विनाश-रूप सजा भोगते ही रहते हैं। इसीको मूर्ख लोग वैज्ञानिक प्रगति कहते और मानते हैं। कुत्ते दूसरे कुत्तोंसे लड़ाई करते हैं और डरते हैं। यदि सभ्य कहे जानेवाले मनुष्य भी परस्पर लड़े अथवा एक-दूसरेसे भयभीत रहें तो नीच कुत्तों और सभ्य मनुष्योंमें अन्तर ही क्या रहा ? कुत्ते अपने दाँतों और पंजोंके जोरसे दूसरे कुत्तोंसे लड़ते हैं और तथाकथित सभ्य मनुष्य वैज्ञानिक ढङ्गसे हाइड्रोजन बम या एटम बम द्वारा परस्पर लड़ते हैं। फिर क्या कारण है कि ऐसे तथाकथित सभ्य मनुष्य समाजको (?) कुत्तोंसे भी बढ़कर न माना जाय ? यदि इन दोनोंमें केवल इतना ही अन्तर है, तो मैं ऐसे वैज्ञानिकोंसे दूर ही रहना चाहता हूँ।

हमलोग भी वैज्ञानिक हैं, परन्तु हमलोग दूसरे ढंगके वैज्ञानिक हैं। हमारा कहना है कि हम सभी जीवात्माएँ—पशु, पक्षी, कीट, पतङ्ग, मनुष्य, देवता, किन्नर, गन्धर्व और सिद्ध—सबके सब एक भगवानकी ही सन्तान हैं। इसलिये हम सब भाई-भाई हैं। परन्तु इसमें एक विचार यह है कि नीच-पशु-पक्षी लोग हमारे भाई होते हुए भी पतित हो गये हैं। वे इतने पतित हो गये हैं कि भगवानको बिलकुल भूल गए हैं और यदि उनको भगवानके सम्बन्धमें कुछ बतलाया भी जाय तो उनको कुछ समझनेकी शक्ति नहीं है। परन्तु मनुष्य समाजमें ऐसी बात नहीं है। मनुष्य चाहे जितना भी पतित हो जाय, उसे ठीक-ठीक समझानेसे वह अवश्य ही भगवानको जान सकता है। अतएव आजके सभ्य मनुष्य स्थिर मस्तिष्कसे यदि यह जानना चाहें कि भगवान क्या है ? जीवात्मा क्या है ? जगत् क्या है ?—तो वे सब कुछ समझ सकते हैं। कुत्ते और मनुष्यमें केवल यही अन्तर है। अन्यथा दूसरे विषयोंमें दोनों समान हैं। हमलोग यही चीज विज्ञानको देना चाहते हैं, जिसका प्रचार होनेसे शिखर-सम्मेलनकी पुनः कोई आवश्यकता ही नहीं रह जायेगी। साथ-ही-साथ ठण्डी लड़ाई भी समाप्त हो जायगी। इसलिये हमारा जो विज्ञान है, वह प्रयोगात्मक है, परन्तु आप लोगोंका विज्ञान सर्वथा ध्वंसात्मक है।

आप मध्याकर्षणके कानून (लॉ) को तो समझे हुए हैं, परन्तु उस कानूनको बनानेवाला कौन है, उसको नहीं जानते हैं। इस बातको कोई अस्वीकार नहीं कर सकता है कि जितने भी कानून (लॉ) हैं, उन सबको बनानेवाला या जारी करनेवाला कोई न कोई अवश्य है। अतः यह निश्चित है कि मध्याकर्षण कानूनको किसीने अवश्य ही बनाया है और जिसने इस कानूनको बनाया है, वह आप जैसे वैज्ञानिकोंसे बहुत ही अधिक मस्तिष्कवाला होगा। साधारण जनता सरकारी कानूनको मान कर चलती है। वह कानून बनानेवालोंसे परिचित नहीं होती। तो इसका यह मतलब नहीं है कि कानून बनानेवाला कोई है

ही नहीं । ठीक उसी प्रकार प्राकृतिक नियमोंको बनानेवाला भी अवश्य ही सिद्ध होता है; चाहे आप उसे जाने या न जाने । और यदि आप उस कानूनको तोड़ फोड़ करनेका प्रयत्न करेंगे तो आपको दण्ड अवश्य-अवश्य मिलेगा ।

आपने तलवारकी जो चर्चा की है, उस विषयमें यह कहना है । कि तलवार सब समय निन्दनीय नहीं है । क्योंकि राष्ट्रकी कानून आदि व्यवस्थाओंका ठीक-ठीक सञ्चालन करनेके लिये—राष्ट्रके हितके लिये राष्ट्र-विरोधी उपद्रवोंका दमन करनेके लिये राष्ट्रीय तलवार-विभाग (सैन्य-विभाग) की आवश्यकता कौन अस्वीकार करेगा ? उसी प्रकार प्राकृतिक नियमोंको तोड़नेवालोंको दण्ड देनेके लिये तलवार-विभाग हैं—ज्वालामुखी पर्वत, भूचाल, बाढ़, तूफान, महामारी, युद्ध इत्यादि । यदि आप प्राकृतिक कानूनोंका तोड़-फोड़ करेंगे तो आपकी वैज्ञानिक उन्नतिका चाकचिक्यपूर्ण स्वांग भगवानके तलवार-विभाग द्वारा नष्ट-भ्रष्ट हो जायगा । उसे आपका हाईड्रोजन और अटम आदि बम अथवा जगत्के समस्त आधुनिक वैज्ञानिकोंका सम्मिलित प्रयास भी बचानेमें सफल नहीं हो सकेगा । यदि सब लोग भगवानका कानून मानकर चलेंगे तो भगवानका तलवार-विभाग भी निष्क्रिय रहेगा । परन्तु ऐसा कभी नहीं होनेका है, क्योंकि सब समय कुछ-न-कुछ व्यक्ति ऐसे रहेंगे ही जो भगवानके कानूनोंका उल्लंघन करते ही रहेंगे और उनको दण्ड देनेके लिये तलवार-विभाग भी बना रहेगा ।

रचनात्मक ठोस कार्योंमें हमलोग भी विश्वास करते हैं । थोथी कहानियोंमें हम भी विश्वास नहीं रखते—इसे आपको जान लेना चाहिए । जब आप सचमुच ही स्पुटनिक द्वारा चन्द्रलोकमें आने-जाने लगेंगे, उस समय मैं मानूँगा कि आप वैज्ञानिक ढङ्गसे कुछ ठोस कार्य किये हैं । अन्यथा २०-२५ हजार मील ऊपरमें घूम-घाम कर आनेसे आप लोग चाहे जितना भी ताली क्यों न बजाइये, मैं उसे खिलौना ही समझूँगा । चन्द्रलोकमें पहुँचे बिना ही, 'सी ऑफ मास्को' का आविष्कार करना तथा उधर खाली पड़ी हुई जमीनके टुकड़ोंको बेचना—यह सब बच्चोंके ख्यालके अतिरिक्त क्या है ? मैं तो ऐसा ही समझता हूँ ।

पुरानी पोथियों सम्बन्धी आपकी धारणा भी हास्यास्पद लगी । पुरानी पुस्तकें तो आप भी काममें लाते हैं । क्या आप सर आइजक न्यूटन आदिकी लिखी हुई पुस्तकें नहीं पढ़ते हैं ? जैसे आप अपनी वैज्ञानिक-साधनाके उपयोगी पुरानी पुस्तकोंकी सहायता लेते हैं, वैसे ही हम लोग चिद्विज्ञानकी साधनामें सहायक बड़े-बड़े अनुभवी महाजनोंकी पुरानी पुस्तकों—वेद-पुराण आदि ग्रन्थोंका सहारा लेते हैं । आप इन ग्रन्थोंको समझ नहीं पाते, इसीलिये ये सब ग्रन्थ बेकार नहीं हो जायेंगे । जैसे कोई व्यक्ति यदि सर आइजक न्यूटनकी पुस्तकोंको समझ नहीं पाता, तो वे पुस्तकें बेकार नहीं हो जायेंगी । मूर्ख लोग जिस चीजको समझ नहीं पाते, उसे बेकार या अनुपयोगी बतलाकर अपनी मूर्खताका ही प्रमाण देते हैं । हम लोग जिन पुरानी पुस्तकोंको काममें लाते हैं, उन सबमें अप्रकृत विज्ञानकी बातें हैं । उनको समझनेके लिये कुछ तपस्याकी आवश्यकता है । यदि आप वह तपस्या स्वीकार करेंगे तो आप भी उन पुरानी पोथियोंके उपासक बन जायेंगे ।

वैज्ञानिक अनुभूतियोंको जब रचनात्मक या प्रयोगात्मक काममें लगाया जाता है तभी उसकी मान्यता होती है । परमार्थिक विज्ञानके सम्बन्धमें भी यही बात लागू है । परमार्थिक-विज्ञान भी व्यवहारिक-जीवनके काममें लगाया जा सकता है और हम लगाते भी हैं । पारमार्थिक-विज्ञान भौतिक विज्ञानकी भाँति ही प्रयोगात्मक या रचनात्मक हैं, केवल अनुभूत्यात्मक नहीं ।

भगवान् अवश्य ही मायामोहित भौतिकवादियों के लिये छिपा-चोरीका खेल खेलते हैं । क्योंकि

भौतिकवादी भगवानके विषयमें गम्भीर प्रयास नहीं करते हैं। बच्चे छिपा-चोरी खेलते हैं और खेलते-खेलते छिपे चोरको पकड़ भी लेते हैं। वैसे ही यदि आप भी प्रयास करेंगे तो चित्त-चोरको पकड़ सकेंगे। भगवान तो कहीं दूर नहीं हैं, वे आपके हृदयमें ही छिपे हुए हैं। परन्तु आपने उनको पकड़नेके लिये कभी भी चेष्टा नहीं की। आप जिस प्रकार स्पुटनिक उड़ाकर बादलोंको भेद कर चन्द्रलोक पहुँचनेके लिये कठोर परिश्रम कर रहे हैं, भगवानको ढूढ़नेके लिये आपको उस प्रकार कोई आकाश आदिमें जानेकी आवश्यकता नहीं होगी। उसके लिये यदि आप अपने हृदय-आकाशमें ही उचित प्रयास करेंगे तो आपको भी वहीं पर भगवानके दर्शन मिल जायेंगे। परन्तु भगवानको देखनेके लिये जो प्रयास है उसका तात्पर्य भौतिक आँख और कान आदि उपाधियोंसे अपनेको सर्वथा निर्मल बनाना पड़ेगा। यदि आप रूसी उपाधि से और मैं भारतीय उपाधिसे युक्त बना रहूँ तो हम भगवद्दर्शनके कदापि योग्य नहीं बन सकेंगे। अतः यदि आप भगवानको देखना चाहते हैं तो पारमार्थिक विज्ञानका यथायोग्य अनुशीलन कीजिये।

भगवान अपनी इच्छासे स्वयं भी आते हैं और अपने प्रिय भक्तोंको भी भेजते हैं। पर भौतिकवादी उनको देख कर भी नहीं देखते हैं, क्योंकि वे भगवान की माया द्वारा मोहित हैं। आपके यूरोप महादेशमें भगवानके प्रिय पुत्र महात्मा यीशु प्रभु आये थे। परन्तु आपके जैसे व्यक्तियोंने उनको क्रूशमें ठोककर मार डालनेका प्रयत्न किया। हमारे देशमें भी भगवान श्रीकृष्ण और रामचन्द्र आये थे और उन्हें भी कंस और रावण आदि भौतिकवादियोंने मारनेका प्रयत्न किया। भगवान् और भगवद्भक्तोंको कोई मार नहीं सकता। फिर भी भौतिकवादी उनको मार डालने का सदा प्रयत्न करते हैं।

(क्रमशः)

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त स्वामी महाराज

उपनिषद्-वाणी

छान्दोग्योपनिषद् (१)

इन चराचर जीवोंका आधार पृथ्वी है। पृथ्वीका आधार या कारण—जल है, जलका रस—उसपर निर्भर करनेवाली औषधियाँ हैं, औषधियोंसे पोषण पाने वाले मनुष्य आदिका शरीर है। मनुष्यका प्रधान अङ्ग वाणी है। इस वाणीका सार ऋक् है और ऋकका प्रधान अंश साम है। साम गाया जाता है। इसलिये (कीर्त्तन-प्रधान अङ्ग होनेके कारण) इसकी श्रेष्ठता है, साम-मंत्रोंद्वारा देवताओंकी स्तुति की जाती है। इस साममें भी उद्गीथ अर्थात् ओंकार ही सर्वश्रेष्ठ है। यही परम ब्रह्मका धाम अर्थात् आश्रय रूप है।

वाणी ही ऋक् है। प्राण साम है और 'ऊँ' यह अक्षर ही उद्गीथ है। प्राण और वाणी, ऋक् और साम अभिन्न हैं, एक दूसरेके पूरक हैं। वाणी और प्राणको 'ऊँ' इस अक्षरके साथ संयुक्त किया जाता है। तब यह सदाके लिये पूर्णकाम—कृतकृत्य हो जाता है। अर्थात् प्राणयुक्त प्राणी वाणीके द्वारा ओंकार का कीर्त्तन करके धन्य हो सकता है। इस रहस्यको जो जान लेते हैं, वे ओंकार रूप अविनाशी परमेश्वर की उपासना करके सम्पूर्ण कामनाओंकी प्राप्ति कराने में समर्थ होते हैं।

यह ओंकार अनुज्ञा अर्थात् अनुमतिसूचक भी है, क्योंकि मनुष्य जब कभी किसी बातके लिये अनुमति देता है तब 'ओम्' इस शब्दका ही उच्चारण करता है। ओंकार द्वारा ही ऋक्, यजु और साम—इन तीनों वेदोंमें वर्णित यज्ञादि कर्म आरम्भ होते

हैं। इस ओंकार रूप अविनाशी परमात्माकी उपासना के लिये 'अध्वर्यु' नामक ऋत्विक् मन्त्र सुनाता है। ओंकारका उच्चारण करके ही होता शंसन अर्थात् मन्त्र पाठ करते हैं और ओंकारका उच्चारण करके ही उद्गाता उद्गीथका गान करते हैं। जो इस ओंकारका रहस्य जानते हैं और जो नहीं जानते हैं सभी इसका उच्चारण करके ही समस्त कर्मोंका आरम्भ करते हैं। किन्तु जो इस अक्षर तत्त्वको जान कर श्रद्धापूर्वक कार्य करते हैं, वे अधिक सामर्थ्ययुक्त होते हैं। यही इस ओंकार रूप अक्षरकी महिमाका वर्णन है।

जिस समय देवता और असुर दोनों आपसमें लड़ रहे थे उस समय देवताओंने ओंकारको ध्येय बनाकर यज्ञद्वारा उसकी उपासना की थी। उनका उद्देश्य यह था कि 'इस अनुष्ठान द्वारा हमलोग असुरों को हरा देंगे। उन्होंने पहले घ्राणेन्द्रियको उद्गीथ बनाकर उपासना की। परन्तु असुरोंने घ्राणेन्द्रियको राग-द्वेष रूप पापसे युक्त कर दिया। इसलिये घ्राणेन्द्रिय कलुषित होनेके कारण उसके द्वारा जीव अच्छी बुरी दोनों प्रकारकी गंधको ग्रहण करता है। तदनन्तर देवताओंने वाणीको उद्गीथ बनाकर उपासना की। असुरोंने उसे भी राग-द्वेष द्वारा दूषित कर दिया। इसीलिये मनुष्य उसके द्वारा सत्य और झूठ दोनों बोलता है। इसके बाद देवताओंने उद्गीथ रूपसे नेत्रकी उपासना की। उसे भी असुरोंने राग-द्वेषसे मलिन कर दिया। चक्षु-इन्द्रिय राग-द्वेषसे मलिन होनेके कारण उनसे मनुष्य देखने योग्य और न देखने योग्य—शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके दृश्य देखता है। अबकी बार देवताओंने श्रोत्रकी उद्गीथ रूपसे उपासना की। असुरोंने उसे भी राग-द्वेषसे दूषित कर दिया। इसीसे मनुष्य कानोंसे श्रवणयोग्य और श्रवण न करने योग्य—शुभ और अशुभ दोनों प्रकारके शब्द सुनता है। फिर देवताओंने मन की उद्गीथ रूपसे उपासना की। उसे भी असुरोंने राग और द्वेषसे मलिन कर दिया। इसीलिये मनुष्य उसके द्वारा अच्छे-बुरे दोनों प्रकारके संकल्प या विकल्प करता है। अन्तमें देवताओंने प्राणकी उद्गीथ रूपमें उपासना की। उसे भी असुरोंने राग-द्वेषसे दूषित करना चाहा। परन्तु इस बार वे ऐसा करनेमें असमर्थ रहे, क्योंकि वह अच्छेद्य पत्थरकी भाँति सुदृढ़ है। इसके द्वारा मनुष्य जो कुछ खाता है और जो कुछ पीता है, उससे वह मन-इन्द्रियादि प्राणोंकी भी रक्षा करता है। अंतकालमें प्राण निकल जाने पर इसके साथ ही अन्य सब प्राणोंको लेकर जीवात्मा भी शरीरसे निकल कर बाहर चला जाता है। यही प्राणकी महिमा है।

यह प्रसिद्ध है कि अंगिरा ऋषिने प्राणको ही प्रतीक बनाकर ओंकार स्वरूप परमात्माकी उपासना की थी। अतः लोग इसीको अङ्गीरस—अङ्गीराका उपास्य मानते हैं; क्योंकि यह समस्त अङ्गोंका रस—पोषक है। बृहस्पतिने भी इसी प्राण द्वारा ओंकार रूप परमात्माकी उपासना की थी। परन्तु लोग प्राणको ही 'बृहस्पति' मानते हैं, क्योंकि वाणीका एक नाम बृहती भी है और उसका यह पति—रक्षक है। आयास्य नामक ऋषिने भी बृहस्पतिका अनुसरण कर प्राणके रूपमें उद्गीथकी उपासना की थी। इसलिये लोग इसको आयास्य कहते हैं; क्योंकि यह मुखके द्वारा आता-जाता है। दल्भके पुत्र बक नामक ऋषिने भी प्राणकी उपासनारूप साधनके द्वारा परमात्माकी उपासना की थी। वे प्रसिद्ध ऋषि नैमिषारण्यमें यज्ञ करनेवाले ऋषियोंके उद्गाता हुए थे। उन्होंने ऋषियोंकी कामना पूर्ण करनेके लिये उद्गीथका गान किया था। जो इस प्रकार प्राणकी महिमा जानकर ओंकारकी उपासना करते हैं, वे निस्संदेह अपनी मनोवांछित वस्तु को आकर्षित करनेमें समर्थ होते हैं।

सूर्य उदित होकर समस्त प्रजाके प्राण-रक्षक होने के कारण उनके लिये अन्न उत्पादनके उद्देश्यसे उद्गान करता है। उनकी उन्नतिका कारण बननेसे सूर्यको उद्गीथ कहते हैं। केवल यही नहीं सूर्यके उदय होने से अन्धकार और भयका नाश हो जाता है। जो सूर्य का प्रभाव जान लेते हैं, वे अज्ञानरूप अन्धकार का नाश करनेमें समर्थ होते हैं।

प्राण और सूर्य दोनों समान ही हैं। क्योंकि यह मुख्य प्राण उष्ण है और सूर्य भी गरम है। इस प्राणको लोग 'स्वर' (क्रियाशक्ति सम्पन्न) कहते हैं। सूर्यको भी 'स्वर' और प्रत्यास्वर (स्वयं क्रियाशक्तिमान) कहते हैं। इसलिये प्राण और सूर्यकी उद्गीथके रूपमें उपासना करनी चाहिए।

इसके बाद दूसरे प्रकारकी उपासना बतलायी जा रही है। व्यानको भी उद्गीथ बनाकर उपासना करनी चाहिए। मनुष्य जिस श्वासके द्वारा भीतरकी वायुको बाहर लाते हैं, वही व्यान है। बाहरकी वायु को जो भीतर ले जाता है, वही अपान है। प्राण और अपानकी सन्धि ही व्यान है। व्यान ही वाणी है। (पहले 'प्राण'-शब्दसे प्राणोंकी समष्टिका वर्णन किया गया है, केवल श्वासके कार्यको ही प्राण नहीं कहा गया है) इसलिये मनुष्य श्वासको बाहर निकालने और भीतर खींचनेकी क्रिया न करता हुआ ही वाणीका स्पष्ट उच्चारण करता है। अर्थात् सामान्यतया बोलते समय श्वास-प्रश्वासकी क्रिया बन्द रहती है।

वाणी ही ऋक् है, वाणी ही साम है और साम ही उद्गीथ है। इसलिये मनुष्य श्वास-प्रश्वासका कार्य न करके ही उद्गीथका गान कर सकता है। प्राण, अपान और व्यान—इन तीनोंमें व्यानकी ही प्रधानता है। व्यान ही तीनोंका आधार है। इनके अतिरिक्त विशेष सामर्थकी अपेक्षा रखनेवाले कर्म व्यान द्वारा ही होते हैं। जैसे—काष्ठ-मंथनद्वारा अग्नि प्रकट करना, कठोर धनुषको खींचना, इत्यादि—इन सबको मनुष्य प्राण और अपनकी क्रियाको रोक कर व्यानके द्वारा ही करता है। इस प्रकार व्यानकी श्रेष्ठता प्रतिपादित होनेसे व्यानके रूपमें ही उद्गीथ की उपासना करनी चाहिए।

यहाँ 'उद्गीथ-शब्दका अर्थ बतलाया जा रहा है—उद्गीथमें तीन अक्षर हैं। उनमेंसे 'उत्'—उत्थानका वाचक है; 'गी' वाणीका द्योतक है। क्योंकि 'गी' का अर्थ वाणी है। तृतीय 'थ' अन्नका वाचक है, क्योंकि यह समस्त जगत् अन्नके आधारपर स्थित है और 'थ' स्थितिका बोधक है। 'उत्' स्वर्गलोक, 'गी' अन्तरीक्ष और 'थ' भूलोक है। 'उत्' ही आदित्य है, 'गी' वायु और 'थ' अग्नि है। 'उत्' ही सामवेद है, 'गी' यजुर्वेद है और 'थ' ऋग्वेद है। इस प्रकार जाननेवाला जो साधक 'उद्गीथ' शब्दके इन तीनों अक्षरोंकी ओंकार-वाच्य परमात्माके रूपमें उपासना करता है, उसके लिये वाणी अपना सारा रहस्य प्रकट कर देती है अर्थात् उसके सामने समस्त वेदोंका तात्पर्य अपने आप प्रकट हो जाता है तथा वह सब प्रकारकी भोग सामग्रीसे एवं उसे भोगनेकी शक्तिसे भी सम्पन्न हो जाता है।

अब साधनके सात अङ्गोंको बतलाया जा रहा है, इन्हें ध्यान रखना चाहिए।

(१) जिस सामके द्वारा साधक अपने इष्टदेवकी स्तुति करता है, उसे सर्वदा याद रखे।

(२) वह साम-मन्त्र जिस ऋचामें प्रतिष्ठित हो, उसे भी स्मरण रखे।

(३) जिस ऋषिने उस मन्त्रका साक्षात्कार किया है, उस ऋषिको स्मरण रखे।

(४) जिस देवताकी स्तुति करनी हो, उपासक उस देवताका भली-भाँति स्मरण रखे।

(५) मन्त्रका छन्द याद रखे। क्योंकि उच्चारण में उलट-फेर होनेसे विरुद्ध क्रिया होती है।

(६) सामवेदके स्तुति करने योग्य स्तोत्रोंका स्मरण रखे।

(७) जिस ओर मुख करके स्तुति करनी हो उस दिशाका भी ध्यान रखे।

प्रमादरहित होकर अपनी ध्येय वस्तुकी उपासनामें नियुक्त रहनेसे अभीष्ट सिद्ध होता है।

इस प्रकार वायु, सूर्य आदिको ध्येय बतलाया गया है। परन्तु यह वास्तविक तात्पर्य नहीं है। भगवान वेदव्यासने ब्रह्मसूत्रमें इन-सबका यथार्थ तात्पर्य प्रकाशित किये हैं। ये सब नाम परमात्माके ही वाचक हैं—संक्षेपमें यही तात्पर्य है।

—त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति भूदेव श्रौती महाराज

जगद्गुरु श्रीमद्भक्तिविनोद ठाकुरका तिरोभाव महोत्सव और श्रीश्रीरथ-यात्रा

गत २७ आषाढ़को आधुनिक युगमें श्रीरूपानुग-धाराके प्रधान संरक्षक आचार्य सप्तम गोस्वामी श्रीसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुरकी तिरोभाव तिथिके उपलक्ष्यमें १०८ श्रीश्रीआचार्यदेवके आनुगत्यमें श्रीउद्धारण गौड़ीय मठ, चूचूड़ामें एक विराट सभाका आयोजन किया गया था, जिसमें त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त मुनि महाराज, त्रिदण्डि स्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराज, श्रीचिद्घनानन्द ब्रह्मचारी आदि वक्ताओंने श्रीठाकुरके अलौकिक चरित्र और शिक्षाके सम्बन्धमें भाषण दिये। सबके अन्तमें श्रीश्रीआचार्यदेवने उक्त विषय पर एक सारगर्भित और महत्त्वपूर्ण भाषण दिया।

पूर्व वर्षोंकी भाँति इस वर्ष भी यहाँ गत २८ आषाढ़से ६ श्रावण तक श्रीश्रीजगन्नाथ देवकी श्रीश्रीरथयात्राका महोत्सव बड़े समारोहके साथ मनाया गया है। इसमें प्रतिदिन शामको श्रीश्रीआचार्य देवने श्रीमद्भागवतका प्रवचन किया, त्रिदण्डिस्वामी श्रीमद्भक्ति वेदान्त त्रिविक्रम महाराजने छायाचित्र द्वारा श्रीकृष्ण और श्रीचैतन्यमहाप्रभुकी लीलाओं पर शिक्षापूर्ण भाषण दिया तथा अन्यान्य त्रिदण्डी संन्यासी महाराजगणने विभिन्न विषयों पर भाषण दिये। अन्तिम दिन सर्व-साधारणको महाप्रसाद वितरण किया गया है।

श्रीगौड़ीय-व्रतोपास

[भाद्रपद]

२६ श्रीधर, ५ भाद्र, २२ अगस्त, मङ्गलवार—एकादशी-उपवास। श्रीश्रीराधागोविन्दकी झूलनयात्रा आरम्भ।
२७ ,, ६ ,, २३ ,, बुधवार—पूर्वाह्न ९-३२ के पहले एकादशीका पारण।
३० ,, ९ ,, २६ ,, शनिवार—श्रीबलदेव-आविर्भाव पूर्णिमाका उपवास, श्रीझूलन-यात्रा समाप्त। रक्षा-बंधन।
१ हृषिकेश, १० ,, २७ ,, रविवार—श्रीबलदेव पूर्णिमाका पारण प्रातः ६-४९ के पहले।
७ ,, १६ ,, २ सितम्बर, शनिवार—श्रीकृष्ण जन्माष्टमीका व्रतोपवास।
८ ,, १७ ,, ३ ,, रविवार—९-३१ के भीतर श्रीकृष्ण-जयन्तीका पारण और नन्दोत्सव।
११ ,, २० ,, ६ ,, बुधवार—पद्मवर्द्धिनी महाद्वादशीका उपवास।
१२ ,, २१ ,, ७ ,, बृहस्पतिवार—पूर्वाह्न ९-३२ के भीतर महाद्वादशीका पारण।
१९ ,, २८ ,, १४ ,, बृहस्पतिवार—श्रीअद्वैतपत्नी सीतादेवीका आविर्भाव।
२२ ,, ३१ ,, १७ ,, रविवार—श्रीललिता सप्तमी।